सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 56 ; अंक : 03
जून 2023

प्रकाशन तिथि : 01.06.2023

मूल्य – एक प्रति: 22/- , द्विवार्षिक : 400/-

अमृतकण

शरीरमर्थसम्प्राप्तिं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्
कृमिविड्भस्मविष्ठान्तं दुर्गन्ध मलमूत्रकम्

अन्त में कीड़ा विट भस्म होने वाले दुर्गन्ध मल और मूत्र वाले शरीर को, धन को और ऐश्वर्य को सद्गुरु को अर्पण कर देवे।

श्लेष्मरक्तत्वचामांसं तनुरिस्थं वरानने
संसारवृक्षमारूढ़ाः पतन्ति नरकार्णवे

हे सुन्दर मुखवाली! कफ, लहू, खाल, मांस वाले शरीर रूपी वृक्ष पर चढ़े हुये जीव नरक रूपी संसार में गिरते हैं।

श्री गुरुवर्यचरणद्वन्द्वम् यस्यां दिशि विराजते
तस्यै दिशेनमस्कुर्यात् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये

हे प्रिये! श्री गुरुदेव के दोनों चरण जिस दिशा में विराजते हैं। उस दिशा को प्रतिदिन भक्ति से नमस्कार करें।

गुरुपादप्रसादेन ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्
यनोद्धृतमिदं विश्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः

गुरुदेव के चरणों के प्रसाद से ज्ञान स्वयं उत्पन्न होता है। जिसने इस विश्व को धारण कर रखा है उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 जून 2023 अंक : 03

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे
तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते।।

अर्थात्

जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर, बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप को करता हुआ वेदपठन, वीर्य्यनिग्रह, आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर स्नातक हो करके पूर्ण विद्याओं को धारण कर सुन्दर वर्णयुक्त होके पृथिवी में अनेक शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है, वही धन्यवाद के योग्य है।

वीर्य निग्रह और ब्रह्ममय आचरण बनाकर रहने वाले साधक ही वस्तुतः ब्रह्मचारी कहलाते है। और ऐसे निष्ठावान ब्रह्मचारी ही पृथ्वी पर अपने यश का प्रकाश फैलाते है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज* 03
2. सम्पादकीय 07
3. श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- *डॉ. विजय सिंह* 11
4. लीला धारी की लीलाऐं....6- *श्री जगदीश राय बंसल* 15
5. गुरुजी देख रहे हैं- *श्री अनूराम यादव* 19
6. महर्षि पतंजलि का योग-दर्शन- *श्री दिनेश चन्द्र शर्मा* 23
7. योगाभ्यासी के लिए धारणा- *श्री स्वामी अभयानन्द* 26
8. सत्य और वाक्-सिद्धि- *योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज* 29
9. विद्यार्थी जीवन में योग का महत्त्व- *श्री रामजीवन सिंह* 36

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1000.00

विशेष लेख

अध्यात्म योग-अपरोक्षानुभूति का विषय है।

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भौतिक विज्ञान की भाँति योग विद्या का जीवन में प्रयोग किया जाता है। इसका हम अपने जीवन में प्रयोग करके इसका दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति रूप लाभ ले सकते हैं। इसका जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। इस कारण से ही विद्वानों ने योग को (Science of Soul) कहा है। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म विषय है इससे सूक्ष्म कोई वस्तु नहीं होती। गीता में भी भगवान् ने नवें अध्याय में इसकी महत्ता को स्पष्ट करते हुये कहा है यह राजविद्या है अर्थात् सभी विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ है इसलिये यह राजविद्या है। इसका जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है इसलिये 'प्रत्यक्षावगमम्' कहा है। दूसरी सबसे बड़ी बात है योग अविनाशी है अतः इसे 'अव्यय' शब्द से अभिहित किया गया है। सभी दर्शनशास्त्रों में योग ही सर्वाधिक प्रत्यक्षीकरण का विषय है। योग एवं वेदान्त दोनों ही शास्त्र अनुभूति के शास्त्र हैं। कुछ लोग वेदान्त दर्शन को ज्यादा श्रेष्ठ मानते हैं योग को वेदान्त दर्शन से हल्का मानते हैं। इस विषय में मुझे एक घटना याद आ रही है जो श्री गुरुदेव से सम्बन्धित है। जिन दिनों गुरुदेव श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश रहा करते थे उन दिनों उनका परिचय दर्शन-महाविद्यालय के प्राचार्य से हुआ। इन्होंने आचार्य जी से कहा-हमारी एक मासिक योग से सम्बन्धित पत्रिका निकलती है उसमें यदि कोई लेख छपने के लिये दें तो लोगों को लाभ होगा। उन्होंने बड़े रूखे शब्दों में कहा योग पर क्या लिखना है वेदान्त पर लिखना होता तो लिखते योग में लिखने को कुछ विशेष है नहीं। श्री गुरुदेव जी उनकी बातों को सुनकर मन ही मन सोचने लगे कि इतने बड़े विद्वान को भी योग के सिद्धान्तों में रुचि नहीं है। शायद यह इन सिद्धान्तों के विषय में जानते ही नहीं हैं। अस्तु! गुरुदेव योग को ही सब दर्शनों का साध्य विषय मानते थे। वस्तुतः वेदान्त और योग दोनों का लक्ष्य एक ही है। योग कैवल्य को लक्ष्य मानता है जिससे सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति हो जाती है और योगी अपने लक्ष्य आत्मा की स्वरूप स्थिति को पा जाता है जो जन्म-मृत्यु के दायरे से उसे सदा के लिये छुड़ा देता है। वेदान्त का लक्ष्य अद्वैत-सिद्धि है। द्वैत की पूर्णतया समाप्ति।

महर्षि कपिल का सांख्य दर्शन सबसे प्राचीन माना जाता है। गीता में भगवान् कहते हैं–

लोकेऽस्मिन द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ

ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम्।

हे अर्जुन! मैंने प्राचीन काल में ही दो प्रकार की निष्ठाओं का वर्णन किया है। वे हैं सांख्य वालों का ज्ञान योग तथा योगियों का कर्म योग ये दो प्रकार की निष्ठा है। यहाँ पर सांख्य वालों का जो ज्ञान योग बताया गया है यह ज्ञान योग ही बाद में वेदान्त के रूप में प्रचलित हुआ है। कर्मयोग तो योगियों की निष्ठा है ही। वैसे भी दर्शन शास्त्र में सांख्य और योग को एक ही विषय में माना जाता है। सांख्य सिद्धान्त परक शास्त्र है और योग क्रिया परक शास्त्र है।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सः पश्यति। *(गीता 5/5)*

सांख्य और योग को जो एक ही मानता है वह ही यथार्थ जानता है। जबकि बाल–बुद्धि वाले लोग सांख्य और योग को अलग–अलग मानते हैं। ऋषिकेश में शिवानन्द आश्रम से एक मासिक पत्रिका निकलती थी। उसका नाम था योग वेदान्त। इसमें योग और वेदान्त सिद्धान्तों का बड़ा सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है।

उपनिषदों में ज्ञान और कर्म दोनों को ही मुक्ति का साधन माना है। वेद वचन है–

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।

अविद्या अर्थात् कर्म के द्वारा मृत्यु को लाँघकर विद्या से अमृतपद या मोक्ष की प्राप्ति होती है। आगे भी लेख है जो इस बात को और पुष्ट करता है।

न केवलेन योगेन प्राप्यते परमं पदम्।

ज्ञानं तु केवलं सम्यगपवर्गप्रदायकम्।।

केवल योग से ही परम पद की प्राप्ति नहीं होती है ज्ञान भी मुक्ति में सहायक होता है। आगे भी कहा है–

समाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां–गति।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां लभते परमं पदम्।

अर्थात् जिस प्रकार से पक्षी दोनों पंखों की मदद से उड़ने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार से ज्ञान एवं कर्म से परम पद की प्राप्ति होती है।

योग एवं वेदान्त में दुःखों का मूल कारण अविद्या ही माना है। इसी का समूलोन्मूलन करना दोनों का लक्ष्य है। अविद्या का स्वरूप एक जैसा दोनों का मान्य है। अविद्या को वेदान्त में माया नाम से भी कहा जाता है। अविद्या के योग दर्शन में चार पर्व बताये हैं। पहला है अनित्य वस्तु को नित्य समझ लेना, दूसरा है अपवित्र को पवित्र मान लेना, तीसरा है दुःख को ही सुख समझना। चौथा है अनात्म वस्तु को आत्मा समझ लेना। यह अविद्या का स्वरूप है जो दोनों को मान्य है। योग का सूत्र है–

अनित्याशुचि दु:खानात्मसु नित्यशुचि
सुखात्म–ख्यातिरविद्या। *(योग सूत्र 2/5)*

अविद्यादि पञ्च क्लेश ही विपर्यय कहलाते हैं–

क्लेशाः इति पञ्च विपर्ययाः। *(व्यासभाष्य 2/3)*

क्लेश से कर्म तथा पुनः कर्मफल की व्यवस्था के कारण यह परम्परा चली आ रही है। यही संसार चक्र है।

योग साधना में वैराग्य का महत्वपूर्ण स्थान है इसके बिना वृत्तियों का निरोध असंभव है। यह वैराग्य भी दो प्रकार का है। पहला है–

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्। *(यो. द. 1/15)*

अर्थात् इस लोक के सुन्दर भोग्य पदार्थ खानपान, स्त्री तथा अन्य वैभव की आसक्ति का त्याग अपर वैराग्य है। वेद शास्त्र तथा पुराणों में वर्णित स्वर्गीय भोगों के प्रति भी अनासक्ति का होना इसी वैराग्य का अंग है। दूसरा पर–वैराग्य है। विवेक–ख्याति से उत्पन्न ज्ञान को ही हेय मानकर धर्ममेघ समाधि को पाना तथा असम्प्रज्ञात में आरुढ़ होना इस पर–वैराग्य का लक्ष्य है। इसी से ही निर्बीज समाधि की परिपक्व अवस्था मिलती है। वेदान्त भी वैराग्य की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारता है। नश्वर पदार्थों के प्रति पूर्णरूप से अनासक्त रहना वेदान्त को अभीष्ट है। अनात्म वस्तु में राग का अभाव ही वैराग्य को पुष्ट करता है। वेदान्त में माया का वर्णन अधिक हुआ है। इसे योग में प्रकृति कहते हैं। विवर्तवाद माया का ही रूप है। यही जगत का मिथ्यात्व है। योग में भी 'विपर्यय' को मिथ्या ज्ञान कहा गया है।

'विपर्ययो मिथ्याज्ञानं अतद्रूप–प्रतिष्ठितम्' *(यो. द. 1/8)*

अर्थात् मिथ्याज्ञान उसे कहते हैं जो वस्तु जैसा मालूम पड़ रहा है वह वैसा नहीं होता है। अज्ञानता से रज्जू में सर्प का बोध होना ही मिथ्या ज्ञान है। रज्जू में सर्प का भान होता है किन्तु प्रकाश के प्रकट होने पर वह रज्जू ही होता है सर्प नहीं। यह भी योग में चित्त की एक वृत्ति है, निराकरणीय है। योग शास्त्र में चित्त की असंख्य वृत्तियों को रोकने का उपदेश हुआ है। इन वृत्तियों को प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति के नाम से पाँच श्रेणियों में बाँटा है। इन पाँचों वृत्तियों के क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो भेद और बन जाते हैं। क्लिष्ट वृत्ति दुःख का जनक है जबकि अक्लिष्ट ज्ञान, वैराग्य, विवेक, ख्याति की ओर ले जाने वाली वृत्ति है जो उपादेय है। उपकारक है लाभकारी है।

वेदान्त मतावलम्बी विचार पर ज्यादा जोर देते हैं उनका कहना है कि विचार ही मुख्य साधना है किन्तु विचार कैसे किया जाये इस पर दो सूत्र दृष्टव्य हैं एक तो सूत्र है **'आसीनः सम्भवात्'** (ब्र. सू. 4/1/8), दूसरा सूत्र है **'ध्यानाच्च'**।

पहले सूत्र के द्वारा बताया गया है कि उचित आसन में स्थिरता पूर्वक देर तक बैठने का अभ्यास किया जाये। दूसरा सूत्र है–'ध्यानाच्च' (ब्र. सू. 4/1/7)। अर्थात् स्थिर शरीर होकर के ध्येय का ध्यान करना चाहिये। यह दोनों सूत्र योग की प्रक्रिया को ही पुष्ट करते हैं। विचार भी धारणा का ही रूप है। जब तक एक ही प्रकार का विचार धारा प्रवाह से चल कर ध्यान की दृढ़ अवस्था तक न पहुँच जाये तब तक अभीष्ट लाभ व विवेक ज्ञान नहीं हो पाता। इसे ही निधिध्यासन् कहा गया है।

समाधि लाभ का प्रत्यक्ष फल होता है चित्त का ध्येय में पूर्ण एकाकार होना तथा व्यत्थान में सिद्धियों का स्वतः प्रकट रहना। सिद्धियाँ आत्म–स्थिति की सूचना देती हैं। उपलब्धियों को बताती हैं साधना की। यह स्वतः ही प्रकट रहती हैं इनके लिये अलग से कुछ करना नहीं होता। कुछ वेदान्त वादी कहते हैं सिद्धियाँ कछ नहीं होती हैं इनका कोई अस्तित्व नही है किन्तु यह बात सही नहीं है। योग शास्त्र का लेख है–**'सिद्धिभिः परिहीनं तु नरं बद्ध एवलक्ष्येत्'**। योग शिखोपनिषद में कहा है। सिद्धियाँ जिस साधक में नहीं हैं वह तो बद्ध ही है बन्धन में ही है मुक्त नहीं है। सिद्धियों में फँसना नहीं चाहिये यह बात योग दर्शन में चेतावनी के साथ कह दिया गया है। अन्यथा पुनः संसार चक्र में योगी पड़ सकता है। इस प्रकार से यह समाधि की दशा में विघ्न होती हैं, किन्तु व्यत्त्थान की दशा में ये सिद्धियाँ स्वयं प्रकट रहती हैं योगी के मन के भाव परिणाम रूप में कार्य रूप में परिणत होती रहती हैं। योगी की इच्छा के अनुसार ही समस्त प्रकृति वर्तती रहती है। योगी के इच्छाओं की विघात नहीं होता है। योगी सर्व समर्थ होकर विचरण करता है। इन सिद्धियों में सर्वज्ञता नामक सिद्धि भी ोगी को प्राप्त हो जाती है। सभी सिद्धान्त अपरोक्ष रूप में सामने होकर अर्थ को प्रकट करते रहते हैं। योगी आत्म–विकास के मार्ग पर चलता हुआ अन्त में निर्बीज समाधि को पा जाता है। जीते–जी मुक्त हो जाता है उसका संसार में पुनरागमन नहीं होता है।

योग ही आध्यात्म–विद्या है, पराविद्या है। इसे ही ब्रह्म विद्या कहा गया है। योग से ही दिव्य दृष्टि पाकर योगी परम सत्य ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है।

अगोचरं तथाऽगम्यं रूपनामादिवर्जितम्
निःशब्दंतु विजानीयात् स्वभावो ब्रह्म पार्वति

हे पार्वती! इन्द्रियों का अविषय अगम्य, रूप नाम आदि से रहित, शब्द रहित को ब्रह्म का स्वभाव जाने। अर्थात् मन का निर्विकार मौन भाव ही ब्रह्म है। जैसे गूंगे का स्वाद।

सम्पादकीय—

अविद्या का स्वरूप

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

जगत के कारण के विषय में विभिन्न दर्शन–शास्त्रों में अनेक मत हैं। वेदान्त शास्त्र. के अनुसार ब्रह्म ही जगत का निमित्तोपादान कारण है। सांख्य–योग के अनुसार पुरुष और प्रकृति का संयोग ही जगत का कारण है। इस शरीर का भी आत्मा और बुद्धि का संयोग ही कारण है। यह संयोग पुरुष के भोगापवर्ग सम्पादन के लिए ही माना गया है। आधिभौतिक सृष्टि में जितने भी शरीर संगठन हैं इन सबमें यह संयोग ही कारण है। अविद्या का जैसा स्वरूप–निरूपण योग दर्शन में हुआ है ऐसा स्पष्ट और व्यापक वर्णन किसी अन्य दर्शन में देखने को नहीं मिलता है। अन्य सभी दर्शनों में अविद्या के इस स्वरूप को मुक्त कण्ठ से सम्मान्यता प्राप्त हैं। योग–दर्शन के समस्त सूत्र इस अविद्या सूत्र रूपी नाभि के चारों ओर घूमते हैं।

अविद्या शब्द अनेक ग्रन्थों में अनेक नामों से प्रयुक्त हुआ है। कहीं पर माया, प्रकृति तथा कहीं पर तम और मोह इत्यादि अनेक शब्दों से व्यवहृत हुआ है।

योग–दर्शन के साधनपाद में अविद्या का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है–

''अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्य–शुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।''

आगे इसी के क्रम से व्याख्या की गई है। अनित्य पदार्थों में नित्य जुद्धि रखना पहली प्रकार की अविद्या है। उदाहरण देकर समझाया गया है कि पृथ्वी, चन्द्रमा तथा तारे इत्यादि अनित्य पदार्थों को नित्य मानना अविद्या है। इसी प्रकार के देवतागण, स्वर्गलोकादि नित्य है ऐसा मानना भी अविद्या का प्रथम रूप है। अविद्या का दूसरा रूप बतलाये हुये कहा है कि अशुचि पदार्थों में शुचि ख्याति रखना दूसरे प्रकार की अविद्या है। उदाहरण में बताया गया है कि शरीरादि अशुचि पदार्थों में शुचि का भान होना अविद्या है। शरीर अशुद्ध या अपवित्र कैसे है ? व्यास–भाष्य में एक श्लोक से इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है।

''स्थानाद्‌बीनादुपष्टम्भान्नि: स्यन्दान्निबनादपि कायमाधेय शौचत्वात्पण्डिता ह्यशुद्धिं विदु:।''

अर्थात् मल–मूत्र युक्त माता के उदर से उत्पन्न होने से, रज वीर्य के संयोग द्वारा उत्पत्ति होने से, माता द्वारा खाये गये अन्न इत्यादि के द्वारा इसका पोषण होने से, निरन्तर

नव द्वारों से मलों का बहते रहने से मरणधर्मा होने से, स्नानादि शुद्धि की सदैव अपेक्षा होने के कारण विद्वानों ने इस शरीर को अपवित्र माना है। इस अपवित्र शरीर में पवित्रता समझना अविद्या है। स्त्री आदि भोग्य पदार्थों में शुद्धि का ज्ञान रखकर जो आसक्ति होती है वह भी अविद्या के कारण ही है। **''हिंसादि अपुण्य कार्यों''** में पुण्य जानना भी अज्ञान है। परिणाम–संस्कार दुःख के कारण योगी को सुख में दुःख का ही ज्ञान है। परन्तु अविवेकी लोग ऐसा न देखते हुये दुःख में भी सुखाभास मानते हैं।

अनात्म वस्तु में अविद्या के कारण आत्मख्याति होती है। प्रकृति से लेकर महाभूत पर्यन्त तथा इस शरीर में ही आत्मा बुद्धि जानना अविद्या का चौथा रूप है। इसी से ही मनुष्य को प्राकृतिक तथा वैकारिक बन्ध होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी राजसी तथा तामसी बुद्धि के वर्णन द्वारा अज्ञान का निरूपण किया गया है–

यथा धर्ममधर्मं च, कार्यं चाकार्यमेव च।
अथयावत् प्रज्ञानाति, बुद्धिः सः पार्थ राजसी।।
अधर्मं धर्ममिति या, मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः, स पार्थ तामसी।।

अर्थात्–जिस बुद्धि द्वारा धर्म को अधर्म कार्य को अकार्य समझे वह बुद्धि राजसी है। तथा जो तमावृत्त होने के कारण अधर्म को धर्म जाने तथा सभी वस्तुओं को अन्यथा ग्रहण करे वह तामसी बुद्धि कहलाती है। अविद्या ही अन्य चार अस्मितादि क्लेशों की जननी है।

'अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्।'

ये पाँचों क्लेश चित्त में संस्कार रूप से बने रहते हैं। यह चार रूपों में अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं। ये है प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार। इनमें से प्रसुप्त क्लेश वे होते हैं जो बीजभाव में पड़े हुये अपने कार्य उत्पादन की सामर्थ्य से युक्त होते हैं। बीजवत् समय आने पर इस प्रकार के संस्कार अपना फल देते हैं। यह संस्कारों की प्रसुप्तावस्था है चित्त भूमि में मानो सोये पड़े रहते हैं जब तक उनके भोग का काल नहीं आता। प्रसुप्त हुये इन क्लेशों का विवेक ज्ञान के द्वारा दग्धीकरण किया जाता है जैसे कि कहा गया है–

बीजान्यग्न्युपदग्धानि, न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञान दग्धैस्तथा–क्लेशैर्नात्मा संपद्यते पुनः।।

अर्थात्–जिस प्रकार से बीज को अग्नि में उपदग्ध किये जाने पर पुनः उगने में समर्थ नहीं होते हैं उसी प्रकार से ज्ञानाग्नि से दग्ध होने पर क्लेश पुनः जनमरणादि रुद्र फल को देने में समर्थ नहीं होते हैं। गीता में भी **'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधः'** ऐसा ज्ञानाग्नि का फल बतलाया गया है। तनु क्लेश वे होते हैं जो तीव्र संवेग से किये गये तप,

समाधि, ईश्वर प्रणिधान तथा सिद्ध गुरुओं की सेवा से क्षीण हो जाते हैं। इस प्रकार से वे विवेक ज्ञान के विरोधी नहीं बन पाते हैं। विच्छिन्न क्लेश वे होते हैं जो बीच–बीच में टूट कर फिर जुड़ते भी रहते हैं। राग के समय द्वेष अपने विच्छिन्न अवस्था में होता है। समय आने पर पुनः द्वेष उपस्थित हो जाता है। उदार क्लेश वे कहलाते हैं, जो अपने अनुकूल वृत्ति को पाकर अपने पूरे स्वरूप में प्रकट हो जाते हैं।

जीव जब तक कैवल्यावस्था को प्राप्त नहीं करता तब तक वह क्लेश–कर्म–विपाक तथा कर्माशय से संस्पृष्ट ही रहता है। अविद्यादि पाँच क्लेश ही अनादि काल से जीव के साथ जुड़े हुये हैं। विवेक ख्याति द्वारा ही अविद्यादि क्लेशों का नाश होता है। पुरुष और बुद्धि के संयोग में अविद्या ही कारण है। इस संयोग को ही चिज्जड़ग्रन्थि, हृदय ग्रन्थि, अविद्या–ग्रन्थि इत्यादि नामों से जाना जाता है। इसे कारण शरीर भी कहते हैं। अविद्यादि के रहते हुये ही कर्माशय बनते हैं। **'क्लेश मूलः कर्माशय दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः'** यह कर्मफल दृष्ट जन्म वेदनीय अर्थात् इस जन्म में ही भोगे जाने वाले तथा अदृष्ट जन्मान्तर में भोगे जाने वाले भेद से दो प्रकार के होते हैं।

तीव्र लगन तथा श्रद्धा से किया गया तप समाधि तथा महापुरुषों की अटूट सेवा का फल इस जन्म में ही मिल जाता है। इसी प्रकार से दुःखी जनों को बार–बार पीड़ा देने से तथा महापुरुषों तथा तपस्वियों का बार–बार अपकार करने से तथा विश्वास में आये लोगों से विश्वासघात करने से पाप का फल इसी जन्म में ही मिल जाता है। अविद्या के नाश हो जाने पर ही कर्माशय दग्ध–बीज रूप को प्राप्त होता है। उस समय **'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि यस्मिन्दृष्टे परावरे'** की उक्ति चरितार्थ होती है।

क्लेशों के सक्षम रहते हुये ही उनके फल के रूप में मनुष्यादि जाति, शरीर का जीवन–काल तथा सुख–दुःखादि भोग शरीर को प्राप्त होता रहता है। विवेक ज्ञान तथा पुरुष ज्ञान के अतिरिक्त ज्ञान भी अज्ञान ही है। इसीलिए वेदों में **'अविद्यया मृत्यु' तीर्त्वा विद्यया अमृतमनुश्यते'** ऐसा कहा गया है। अर्थात् कर्मयोग के द्वारा मृत्यु को पार करके आत्म ज्ञान से अमृतत्व की प्राप्ति होती हैं। जितने भी आसुरी सम्पत्ति युक्त कर्म तथा तमोगुण जन्य कार्य होते हैं वह सब अविद्या के रहते ही फलते–फूलते रहते हैं। अविद्या के नाश हो जाने पर **'तदभावे तदाभावः'** इस न्याय से आसुरी प्रवृत्ति का पूर्णतया नाश हो जाता है। काम क्रोधादि विकार भी पूर्णरूपेण नष्ट हो जाया करते हैं। भगवान् ने गीता में इस बात को स्पष्ट रूप से कह दिया है–

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज रसोप्यस्य, परं दृष्टवा निवर्तते।।

अर्थात्–आत्म–दर्शन हो जाने पर राग इत्यादि क्लेशों का समूलोन्मूलन हो जाया करता है यद्यपि निराहारी के भी विषय थोड़े काल के लिए निवृत हो जाते हैं परन्तु बीज रूप में स्थित रहते ही हैं। आत्म–दर्शन वाले योगी के चित्त में इन वासनाओं का बीज भी नहीं रहता है। वह आत्मदर्शी, आप्मकामी, आत्मरामी होता है। **'आत्मन्यैवात्मानं पश्यति'** वाली गति चरितार्थ होती है। विवेक ख्याति प्राप्त हो जाने के बाद ऋतम्भरा प्रज्ञा उदित होती है जिसके फल–स्वरूप योगी को सम्पूर्ण प्रकृति पर अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व रूप सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

इसलिए योग–दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय अविद्या नाश तथा कैवल्य लाभ प्रदान करना है।

पिण्डं किन्तु महादेव पदंकिं समुदाहृतम्।
रूपं च रूपातीतं च यदिहाऽऽख्याहि शंकर।।

पार्वती जी ने कहा–हे महादेव! पिंड क्या है ? पद किसको कहते हैं ? हे शंकर! रूप और रूप से अतीत को भी कहिये।

विश्वयोग दिवस पर

विशेष पाक्षिक योग शिक्षण सत्र

7 जून से 21 जून 2023

आचार्य डॉ. दासलाल जी के तत्वावधान में

गत वर्षों की भाँति विश्वयोग दिवस के उपलक्ष्य में श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र संवाई आश्रम में 15 दिन का विशेष योग प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया जायेगा। इसमें योगासन, जीवन तत्व साधन, नेति आदि षटकर्म, प्राणायाम आदि योग क्रियाओं का प्रशिक्षण दिया जायेगा।

21 जून को विश्व योग दिवस पर समापन सत्र समारोह पूर्वक मनाया जावेगा। इस अवसर पर योगासनों की प्रतियोगिता भी होगी। योग शिविर में प्रशिक्षुओं को पुरस्कृत किया जायेगा।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्या

डा. विजय सिंह

एकादस स्कंध के पन्द्रहवें अध्याय में भक्तियोग, सद्गुरु शरणापत्ति, एवं पातंजलि योग के कई सूत्रों का समावेश हुआ है। भगवत् गीता का दसवाँ अध्याय में भगवान ने अर्जुन के पूछने पर संक्षेप में अपनी विभूतियों का वर्णन किया है। सोलहवें अध्याय में, श्रीमद्भागवत् के अन्तर्गत संदर्भित स्कन्ध में भी भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव को अपनी विभूतियों से परिचय कराया है। उद्धव जी ने कहा—भगवन्! आप स्वयं पर ब्रह्म हैं, न आपका आदि है न अन्त है। यह ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही जानते और उपासना करते हैं। जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया है, वे आपको नहीं जानते। अतः आप हमें अपनी विभूतियों के बारे में बतलाइये।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिय उद्धव! कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय अर्जुन ने मुझसे यही प्रश्न किया था। उद्धव! गतिशील पदार्थों में मैं गति हूँ। गुणों में मैं साम्या अवस्था हूँ। क्रिया—शक्ति, ज्ञानशक्ति तथा कठिनाई से वश में होने वाला मन हूँ। मैं हिरण्य गर्भ हूँ, मन्त्रों में ओंकार हूँ। समस्त देवताओं में मैं इन्द्र, वसुओं में अग्नि, आदित्यों में विष्णु, रुद्रों में नीललोहित नाम का रुद्र हूँ। ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजर्षियों में मनु, देवर्षियों में नारद, गायों में काम—धेनु हूँ। सिद्धेश्वरों में कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष, पितरों में अर्यमा हूँ। आठ प्रकार के योगों में मैं मनोनिरोध रूप समाधि हूँ, मैं ही मंत्र बल हूँ, कौशलों में आत्मा व अनात्मा विवेक रूप कौशल हूँ। अभय के साधनों में आत्मस्वरूप अनुसंधान हूँ।

योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम्।
आन्वीक्षकी कौशलानां विकल्प ख्यातिवादिनाम्।।24।।

अ. 16 स्कं. 11

मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही जीव हूँ, मैं ही गुण हूँ और मैं ही गुणी हूँ। मैं ही सबकी आत्मा हूँ। मेरे अतिरिक्त कोई भी पदार्थ कहीं भी नहीं है। परमाणुओं की गणना हो भी सकती है, परन्तु अपनी विभूतियों की गणना नहीं कर सकता। जिसमें तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हों, वह मेरे ही अंश हैं।

उद्धव जी! ये सब परमार्थ—वस्तु नहीं हैं। मनोविकार मात्र हैं। अतः तुम मौन रहकर, मन के संकल्प—विकल्प बंद करो। प्राणों को वश में करो, इन्द्रियों का दमन करो। सात्विक

बुद्धि के द्वारा प्रपंचों से उपराम हो जाओ। ऐसा करने से संसार के जन्म–मृत्युरूप बीहड़ मार्ग में भटकना नहीं पड़ेगा।

वाचं यच्छ मनोयच्छ प्राणान् यच्छेन्द्रियाणि च।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने।।42।।

जो साधक बुद्धि के द्वारा वाणी और मन को पूर्णतया वश में नहीं कर लेता, उसके व्रत, तप और दान उसी प्रकार क्षीण हो जाते हैं, जैसे कच्चे घड़े में भरा हुआ जल। अतः मेरे परायण होकर भक्तियुक्त बुद्धि से वाणी, मन और प्राण का संयम करे। ऐसा करने से वह कृतकृत्य हो जाता है।

तस्मान्मनोवचः प्राणान् नियच्छेन्मत्परायणः।
मद्भक्तियुक्तया बुद्धया ततः परिसमाप्यते।।44।।

अ. 16 स्कं. 11

उद्धव जी ने कहा—कमलनयन श्रीकृष्ण! आपने हंसरूप से अवतार ग्रहण करके वर्णाश्रम–धर्म का उपदेश दिया था। प्रभो! आप उस धर्म का वर्णन कीजिए, जो आपकी भक्ति प्राप्त कराने वाला है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिय उद्धव! वर्णाश्रमधर्मी मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः सावधान मन से सुनो। जब इस कल्प के प्रारम्भ में पहला सत्ययुग चल रहा था, उस समय सभी मनुष्यों का एक ही वर्ण था 'हंस' उस युग में लोग जन्म से ही कृतकृत्य होते थे। उस समय प्रणव ही वेद था। तपस्या, शौच, दया एवं सत्यरूप चारों चरणों से युक्त मैं ही वृषभरूप धर्म था। उस समय निष्पाप पुरुष शुद्ध (हंस) परमात्मा की उपासना करते थे। सत्ययुग के पश्चात् त्रेता में मेरे हृदय से श्वास–प्रश्वास द्वारा ऋग्वेद, सामवेद और यर्जुवेद प्रकट हुये। मुझ विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रीय, जंघा से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुयी। उनकी पहचान उनके स्वभाव और आचरण से होती है। मेरे ऊरुस्थल से गृहस्थाश्रम, हृदय से ब्रह्म–चर्याश्रम, वक्षःस्थल से वानप्रस्थाश्रम और मस्तक से संन्यासाश्रम की उत्पत्ति हुई है।

इन वर्ण और आश्रमों के पुरुषों के स्वभाव भी जन्मस्थानों के अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम हो गये। चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लिये धर्म यह है कि मन, वाणी और शरीर से किसी की हिंसा न करें। सत्य पर दृढ़ रहें, चोरी न करें, काम, क्रोध तथा लोभ से बचें। जिस कार्य से सभी का भला हो वही करें।

अहिंसा सत्यमस्तेयम कामक्रोध लोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिका।।21।। *अ. 17 स्कं. 11*

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सोलह संस्कारों को करें। गुरुकुल में इन्द्रियों को वश में रखकर निवास करें। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें। यदि स्वप्न आदि में वीर्य स्खलित हो जाये तो स्नानोपरान्त प्राणायाम करे और गायत्री का जप करें। आचार्य को मेरा ही स्वरूप समझो, कभी उनका तिरस्कार न करे। गुरुसर्वदेवमय होता है। जब तक विद्याध्यन समाप्त न हो जाये, तब तक सब प्रकार के भोगों से दूर रहकर गुरुकुल में निवास करें और कभी अपना ब्रह्मचर्य व्रत खण्डित न होने दें। ऐसा ब्रह्मचारी ब्रह्मतेज से सम्पन्न हो जाता है और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्यारे उद्धव! यदि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहण करने की इच्छा न हो तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। गृहस्थ पुरुष को वेदाध्ययन, तर्पण, हवन, भूतयज्ञ, अन्नदान (अतिथि सेवा) द्वारा मेरे स्वरूप भूत ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य एवं समस्त प्राणियों की यथा शक्ति प्रतिदिन सेवा करता रहे।

प्यारे उद्धव! गृहस्थ पुरुष कुटुम्ब में आसक्त न हो। भजन में प्रमाद न करें। घर–गृहस्थी की वासना से जिसका चित्त विक्षिप्त हो रहा है, वह मूढ़ बुद्धि पुरुष भोगों से कभी तृप्त नहीं होता और मरकर घोर तमोमय नरक में जाता है।

अट्ठारहवें अध्याय में भगवान ने उद्धव जी को वानप्रस्थ और संन्यास धर्म का उपदेश किये हैं। गृहस्थ वानप्रस्थ में जाना चाहे तो अपनी पत्नी को पुत्रों के संरक्षण में दे अथवा अपने साथ ले ले और शान्त चित्त से अपनी आयु का तीसरा भाग वन में ही रहकर व्यतीत करे। वहाँ घोर तपस्यामय जीवन व्यतीत करे। कन्द–मूल को अग्नि में भूँजकर एवं मौसमी पके फल पर जीवन निर्वाह करे। तपस्या के परिणामस्वरूप पहले वह ऋषिलोक में जाता है और वहाँ से मेरे पास आ जाता है। क्योंकि तप मेरा ही स्वरूप है। तपस्या निष्कामभाव से करना चाहिए। वानप्रस्थी संन्यासी होना चाहे तो उसे अपना सर्वस्व ऋत्विज् को दे दे। अपेक्षा रहित होकर स्वच्छन्द विचरण करे। देवता संन्यास ग्रहण करने वाले को विघ्न डालते हैं। सन्यासी को सत्यपूत वचन ही बोलना चाहिए। पूर्ण चेतना के साथ बुद्धिपूर्वक ही शरीर के कर्म करे। वाणी के लिये मौन, शरीर के लिये निश्चेष्ट स्थिति और मन के लिये प्राणायाम दण्ड है। जिसके पास ये तीनों दण्ड नहीं हैं। वह बाँस की दण्ड धारणा करने से दण्डी स्वामी नहीं हो जाता।

मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम्।
न ह्येते यस्य सन्त्यङ्ग वेणुभिर्न भवेद् यतिः।।17।।

अ. 18 स्कं. 11

सन्यासी को चाहिए कि अनिश्चित सात घरों से भिक्षा, जितना मिल जाये, उतने से ही

संतोष कर ले। दूसरे समय के लिये बचाकर न रखें। उसे अपनी सभी इन्द्रियों को वश में रखकर अकेले विचारना चाहिए। आत्म–प्रेम में तन्मय रहे। विपत्ति में भी धैर्य न खोवे। उसे अपने आपको मुझ से अभिन्न समझते रहना चाहिए। संन्यासी विचार करे कि आत्मा में जो मन, वाणी और प्राणों का संघातरूप यह जगत है। वह सारा माया है। संकल्प–विकल्प से रहित हो अपने स्वरूप में स्थित हो जाये। मन में हर्ष और विषाद न आने दे। ज्ञान निष्ठ को भेद की प्रतीति ही नहीं होती। देह पात हो जाने पर वह मुझसे एक हो जाता है। जितेन्द्रिय पुरुष को जब यह निश्चय हो जाये कि भोगों का फल दुःख ही दुःख है तब वह विरक्त हो जाये और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण ग्रहण करे। वह गुरु की दृढ़ भक्ति करे, श्रद्धा रखें और उनमें दोष कभी न निकालें। जब तक ब्रह्म का ज्ञान हो, तब तक बड़े आदर से गुरु को ही मुझे समझता हुआ उनकी सेवा करे।

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान्।
अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत्।।38।।
तावत् परिचरेद् भक्तः श्रद्धावाननसूयकः।
यावद् ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः।।39।।

अ. 18 स्कं. 11

परन्तु जिसने पाँचों इन्द्रियों और मन पर विजय नहीं प्राप्त किया है, जिसके हृदय में न ज्ञान है, न वैराग्य है, वह संन्यासी का वेष धारण कर पेट पालन करता हुआ संन्यास धर्म को नष्ट कर रहा है। वह अपने आपको और अपने हृदय में स्थित मुझे ठगने की चेष्टा करता है। वह लोक–परलोक दोनों से च्युत होता है।

संन्यासी का धर्म है–शान्ति और अहिंसा। वानप्रस्थी का मुख्य धर्म है–तपस्या और भगवत् उपासना। गृहस्थ का मुख्य धर्म है–प्राणियों की रक्षा और यज्ञ–याग। ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म है–आचार्य की सेवा। इस प्रकार अपने धर्म पालन के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके मेरे ऐश्वर्य को, मेरे स्वरूप को जान लेता है और ज्ञान–विज्ञान से सम्पन्न होकर शीघ्र ही मुझे प्राप्त कर लेता है।

इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो नचिरात् समुपैति माम्।।46।।

अ. 18 स्कं. 11

''ॐ रामलाल प्रभवे नमः''

लीला धारी की लीलाएँ...6

—जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003 एवं 011–35699425

गतांक से आगे–

राजा रणसिंह की दीक्षा

सिद्धों के महासिद्ध, सर्व समर्थ, योग योगेश्वर श्री प्रभु जी महाराज, हरिहंसनन्द एवं भक्त मण्डली को गोहाटी में ही साधना करने की आज्ञा देकर, मुख राम और कृष्णा नन्द को साथ लेकर 'मय' ग्राम की यात्रा पर चल दिए। कन्द मूल का सेवन करते, बिहड़ वनों के रास्ते जहाँ मुँह फाड़े लम्बे–लम्बे सींगों वाले जंगली भैंसों, खुखार हाथियों के झूण्डों एवं अन्य हिंसक जानवरों, जंगली मनुष्यों इत्यादि से अपनी योग शक्ति से संघर्ष करते एक मनुष्य भक्षिणी नदी पर पहुँचे। नदी के मध्य मल्लाह से दो हाथ करने के बाद किनारे जा पहुँचे। वहाँ से राजा रणसिंह के स्थान पर जब श्री प्रभु जी पहुँचे तो उसने अच्छा आदर–सत्कार किया मगर रात भर श्री प्रभु जी पर जादू–टोनों का आक्रमण करता रहा। उस जादू टोना के गाँव वालों में वह जादू–टोनों का सम्राट था। प्रातःकाल श्री प्रभु जी से क्षमा माँगते हुए कहने लगा–आप मनुष्य के रूप में कोई देव हो और मुझे भव सागर से पार लगाने के लिए ही यहाँ पधारे हो....। श्री प्रभु जी सब जानते ही थे। अन्ततः पकड़े चरण नहीं छोड़ने पर उसे दीक्षित कर दिया।

सिद्ध महा पुरुष को दर्शन–श्री प्रभु जी ने राजा रणसिंह से पूछा कि क्या आपके देश में कोई सिद्ध महात्मा भी रहते हैं? राजा रणसिंह ने हाथ जोड़ प्रार्थना कर कहा–''प्रभो!, हमारे समीप ही एक सिद्ध महा पुरुष दो सौ वर्ष से अधिक आयु वाले रहते हैं।'' दूसरे दिन राजा रणसिंह, पालकी द्वारा अपने गुरुदेव श्री प्रभुजी को उन महात्मा जी के पास ले चले। वहाँ पहुँचने से पहले ही मील भर इधर वहीं सिद्ध महात्मा जी प्रभु जी की पालकी के एक ओर अपना कन्धा लगा कर चलने लगे। यह देखकर राजा रणसिंह ने तुरन्त श्री प्रभु जी से नम्र निवेदन किया कि महात्मा जिन महात्मा जी की ओर आप जा रहे हैं, वे स्वयं आ गए हैं और आपकी पालकी को अपने कन्धे पर उठाए चल रहे हैं। यह सुनकर श्री प्रभु जी पालकी से छलाँग लगा कर उनकी ओर झुके, किन्तु वह महात्मा पहले ही श्री प्रभु जी के चरणों में गिर पड़े। तब श्री प्रभु जी ने उन महात्मा से कहा–महाराज! हम तो लगभग 400 मील से चलकर भयानक वन तथा पहाड़ों की कठिनाइयों को सहते हुए दर्शनों के लिए आपके पास आए हैं। आप ऐसा क्यों करते हैं? तब महात्मा ने कहा–''योगिराज–प्रभो! पूर्व संस्कारवश आपने यहाँ पधार कर दर्शन देने की अपार कृपा की है। इससे मैं आपका मन, वचन से कृतज्ञ हूँ।'' तब श्री प्रभु जी ने कहा–''आप हमें योगीराज क्यों कहते हैं? तो महात्मा जी ने कहा–''मैंने तो केवल 2–3 अंगों का साधन किया है और आप तो अष्टांग योग के स्वामी हैं।''

श्री प्रभु जी ने कहा कि ''मुझे तो अभी सद्‌गुरु–देव जी के दर्शन भी स्थूल स्वरूप में नहीं हुए

है। उनके दर्शन के लिए ही घर से निकला हूँ।'' महात्मा जी ने कहा—''आप तो अन्तर्यामी हैं। अपने को छिपाते हुए यह लीला किये हो। आपके नेपाल जाने पर गुंजेश्वरी—देवी मन्दिर से 8—10 मील आगे महाप्रभु श्री सद्गुरु—देव दर्शन देने पधारेंगे, और आपको लगभग 250 मील ऊपर ले जाकर शीघ्र ही अपने स्वरूप में अभेद कर लेंगे।'' इस वार्तालाप के पश्चात् महात्मा जी, श्री प्रभु जी को अपने स्थान पर ले गए। कन्द—मूल, फल आदि से सत्कार किया।

काठमाँडू एवं गुजेश्वरी मन्दिर—सिद्ध महापुरुष से विदा होकर श्री प्रभु जी मण्डली सहित काठमाडू पहुँच गए। वहाँ के राजा ने भी प्रभु जी को तीन चार दिन पशुपति नाथ मन्दिर एवं अन्य तीर्थ स्थानों के दर्शन कराए। फिर प्रभु जी ने मण्डली को जो जहाँ जाना चाहे भेजकर हरी—हरानन्द के साथ गुंजेश्वरी दुर्गा मन्दिर चल दिए। श्री प्रभु जी ने हरी हरानन्द को कुछ क्रियाएँ सिखला कर, उसे एक गिरीकन्दरा में बिठा दिया और स्वयं एक लोटा और चादर लेकर ऊपर पहाड़ पर चढ़ गए। वहाँ देखा कि 'गुंजेश्वरी दुर्गा' का मन्दिर है, उसमें दूध की धारा बह रही है। वहाँ से श्री प्रभु जी सात—आठ कोस आगे निकल गए और जंगल की एक झाड़ी नीचे रात्री विश्राम करने लगे।

भगवान सदा शिव का साक्षात्कार—श्री सद्गुरु देव महा प्रभु भगवान सदा शिव जी महाराज ने आधी रात्रि में श्री प्रभु जी को दर्शन देकर मधुर वाणी में कहा—''उठो, ब्राह्मण देवता! हम आपको लेने के लिए आए हैं। हमने ही आपको इधर आने की प्रेरणा दी थी।'' ये शब्द सुनते ही हम श्री महाप्रभु जी के दर्शन पाकर उनके श्री चरण—कमलों से लिपट गए। इतनी प्रसन्नता हुई कि चरण छोड़ने कठिन हो गए और शरीर की सुधि न रही। तब श्री महाप्रभु जी ने आशीर्वाद देकर उठाया और फरमाया—''बेटा, ये लो चिमटा, आँखें मूंद हमारे साथ चलो।'' तत्क्षण हमें ऐसा अनुभव होने लगा कि हमारा शरीर हल्का होकर आकाश मार्ग से जा रहा है। थोड़ी देर में पाँव भूमि का स्पर्श करने लगे और श्री महाप्रभु जी ने आज्ञा दी कि ''पुत्र! हमारा आसन स्थान आ गया है, आँखें खोल लो।'' आँखें खोलने पर देखा कि कहीं कोई बस्ती दृष्टिगोचर नहीं होती, बल्कि हिमालय की ऊँची चोटी और चारों तरफ बर्फ ही बर्फ दिखाई देती है। अब हमें बोध हुआ कि हमारे महाप्रभु जी हमें नेपाल से सैंकड़ों मील ऊपर हिमालय की चोटी पर ले आए हैं।

अचानक शेर आ गया—इतने में अचानक एक शेर श्री महाप्रभु जी के बगीचे में आकर खड़ा हो गया। साधारणतया सिंह तो गधे जितने ऊँचे होते हैं, परन्तु वह शेर भैंसे जितना ऊँचा बब्बर शेर था। उसकी आँखें दीपक की भाँति चमक रही थी। तभी महाप्रभु जी ने हमें आज्ञा दी कि ये लो चिमटा और इसको बाहर निकाल दो। मैंने (श्री प्रभु जी ने) सुना हुआ था कि शेर बन्दूक की एक—दो गोली खा कर भी आदमी को मार देता है। तब हमने सोचा कि शेर भले ही हमें खा ले, परन्तु गुरुदेव भगवान की अज्ञा का उल्लंघन न हो। सो चिमटा ले कर शेर की तरफ चल पड़ा। मुझे शेर की ओर बढ़ता देख कर श्री महाप्रभु जी ने अपने भूपटल हाथ से उठा कर जब शेर की ओर देखा तो शेर एक दम से निस्तेज हो पीठ फेर कर खड़ा हो गया। उस समय श्री महाप्रभु जी की आँखो के सामने उस बब्बर शेर की आँखों का तेज कुछ भी नहीं था। तब मैंने चार—पाँच कदम शीघ्रता से बढ़कर चिमटे से शेर पर प्रहार कर दिया। परिणामतः शेर श्वान के समान चिल्ला कर भाग गया।

समाधि लगने लगी—तत्पश्चात् श्री महाप्रभु जी ने हमें क्षुधा निवृत्ति के लिए कन्द–मूल–फल बतला दिए और एक पौधा दिखलाया कि इसको बिल्कुल मत छूना। आसन पर आ कर स्वयं समाधि में बैठने से पूर्व आज्ञा दी कि "पुत्र तुम भी समाधि में बैठ जाना। हम उनके दिव्य ज्योतिर्मय मुखारविन्द को चकोर की तरह निहारने लगे, हमें न क्षुधा याद आई, न तृप्ति हुई। विशेष क्या कहें, आठ पहर त्राटक सिद्ध होने पर टकटकी से समाधि लग जाती थी।

ऐसे हैं श्री महाप्रभुजी—हमारे श्री महाप्रभु जी वे है जिन्होंने काल को जीत लिया है, साक्षात् महादेव अवतार हैं। मुंवें जिनकी अधर तक, विशाल बाहू, वृषभ कंध, दिव्य तेज। शारदा भी उनका वर्णन नहीं कर सकती तो उस ऐश्वर्य को हम कैसे वर्णन करें? प्रात: देखें तो श्री महाप्रभु जी नन्हें से, मध्यान में युवा और सायंकाल में वैसे के वैसे अति वृद्ध दृष्टि गोचर होते रहते थे। जब कभी कोई शेर या भालू महाप्रभु के स्थान पर आ जाता तो पत्थर उठाकर दिखाने से ही भाग जाता। समाधि से उत्थान होने पर जब हमारे मन में संकल्प आता तो हम उसे पहाड़ की शिला पर कोयले से लिख लेते कि जब सदा शिव भगवान समाधि से उठेंगे तो इनकी निवृत्ति कराएंगे। एक रोज हम समाधि से उठे तो हमारे लिखे संकल्पों की तरंगें स्वत: उत्तर के रूप में हमारे हृदय में आ गई और हमने उस पर्वत शिला लिखा हुए साफ कर दी।

तरंग उठी—एक दिन समाधि से उठने पश्चात् मन में घूमने की तरंग उठी तो दो–तीन मील की दूरी पर गुफा में बैठे एक महात्मा से भेंट हुई। मैंने प्रणाम किया, देखा–उनके भूपटल अधर तक बढ़े हुए थे। उन्होंने कहा हम यहाँ 500 वर्ष से रह रहे हैं। मैंने पूछा हमारे श्री महाप्रभु जी कब से विराजमान हैं ? उन्होंने कहा ये हमारे दादा गुरुदेव हैं। हमारे गुरुदेव बतलाया करते थे कि हम इनको पाँच सौ वर्षों से ऐसा ही देखते आ रहे हैं। जब श्री महाप्रभु जी छ: माह के पश्चात् समाधि से उठते हैं, तब चारों ओर से ऋषि समाज अपनी–अपनी जट से बाल लेकर पुष्प माला से स्वागत करते है तथा अमृतमय उपदेश एव दर्शनों से कृतार्थ होकर लौट आते हैं।

मेंढक या जलेबी—एक दिन हम पर्यटन करते हुए चार–पाँच कोस निकल गए। वहाँ देखा कि एक महात्मा तलाई के पास बैठे मेंढकों को उठा उठाकर खा रहे थे। उन्होंने हमको पास में बैठा कर एक दो अंजली हमारी झोली में डाल दी। उन मेंढकों की तत्क्षण जलेबियाँ बन गईं। इतने में मैंने देखा कि श्री महाप्रभु जी चिमटा लिए रिस भरे आ रहे हैं। हम तभी उन जलेबियों को भूमि पर गिरा कर अपने आसन की ओर भागे! तब चिमटा मारने व उस महात्मा के चिल्लाने की अवाजें दूर तक आती रहीं। जब हम अपने आसन पर पहुँचे तो श्री महाप्रभु जी को पूर्ववत् समाधिस्थ देखा। हम भी समाधि में बैठ गए। इस प्रकार बारम्बार के अभ्यास से जब हमारी समाधि पन्द्रह दिन की हो गई तो एक बार हम गुफा के बाहर मैदान में समाधि में बैठ गए। जब उत्थान अवस्था हुई तो देखा कि अधर तक हमारा शरीर बर्फ में गढ़ा हुआ है। ऐसी अवस्था में खड़ा होना, दाएँ–बाएँ देख लेना भी असम्भव था। उस समय हम महाप्रभु जी की ओर देख कर मन–ही–मन मुस्काए और स्वयं हृदय में विचार आया कि हे नाथ! कब तक अपने बच्चे को बर्फ में गढ़ा हुआ देखेंगे? ऐसी भावना आते ही श्री महाप्रभु जी ने दोनों हाथों से बर्फ दाएँ–बाएँ गिरा दिया। हमने श्री चरणों में प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया। मगर अन्दर गुफा में श्री महाप्रभु जी यथावत् समाधिस्थ दृष्टिगोचर हुए। जब हम पुन: पन्द्रह दिन बाद समाधि से उत्थानावस्था में आए तो देखा हमारे आसन को छोड़कर

चारों ओर बर्फ ही बर्फ पड़ी है। तब हम श्री महाप्रभु जी को चादर ओढ़ाने के विचार से गुफा में चले गए। अन्दर ऐसा प्रतीत हुआ कि श्री प्रभु जी के शरीर से प्रचण्ड अग्नि–सा सेक आ रहा है। बाद में ऐसे ही जब जब हम समाधि से उठते तो हमारे आसन को छोड़ कर चारों तरफ बर्फ ही बर्फ गिरती दिखाई देती थी।

मन महेश पर्वत से निमन्त्रण–एक बार श्री महाप्रभु जी छः मास की समाधि से उठे तो महात्मा ऋषिगणों से निवृत्ति पश्चात् तीसरे दिन बोले, ''चलो बच्चे जीम आवें''। अन्तर्यामी जी मेरे मन की शंका को जानकर बोले एक महात्मा की शरीर त्यागने की इच्छा हो रही है, उन्होंने उतरखण्डी महात्माओं को दर्शनार्थ स्मरण किया है। इतना कह कर श्री महाप्रभु जी हमें आकाश मार्ग से ले जाने लगे। पश्चात् हमारे पैर भूमि से स्पर्श करने लगे। आँखें खोलने की आज्ञा पा कर देखा कि मन महेश पर्वत पर बहुत–सा ऋषि समाज एकत्र हो रहा है। उन ऋषियो ने श्री प्रभु जी को प्रणाम कर आसन पर विराजमान कराया। श्री महाप्रभु जी ने उस महात्मा से पूछा कि कहो–महात्मन! तुम शरीर क्यों त्यागने लगे हो? महात्मा–''प्रभो यह शरीर अब जीर्ण हो गया है।'' श्री महाप्रभु जी–''क्या तुम्हारे सब कर्मों का क्षय हो गया है?'' महात्मा जी–''मैं तो यही समझता हूँ।'' श्री महाप्रभु जी–''तुम अपने पिछले संचित कर्मों को अभी देखो। महात्मा जी ने ध्यान से उत्थान होने पर बतलाया कि मैंने एक सौ सातवें जन्म में एक संस्कार पड़ा देखा है। सीढ़ी चढ़ते हुए मेरे हाथ से अंगारों भरा तसला गिर पड़ा और बिल्ली के तीन बच्चे मर गए। श्री महाप्रभु जी ने फरमाया कि सुकर्म भी है। एक सौ एकादश जन्म में तुमने महा यज्ञ भी किया हुआ है। अतः अभी तुम्हारा शरीर त्यागना उचित नहीं है। महात्मा–''प्रभो अब इस जीर्ण शरीर का क्या होगा ? तब श्री महाप्रभु जी ने शक्ति पात कर महात्मा का शरीर युवावस्था में परिवर्तित कर दिया। तब सब महात्माओं का भोज हुआ और श्री महाप्रभु जी सब को आशीर्वाद दे कर चल दिए। मार्ग में 'नील मणि महादेव' एवं बहुत से स्थानों को देखते–देखते निज आसन पर आन पधारे। आते ही श्री महाप्रभु जी समाधिस्थ हो गए। अब हम भी समाधि में बैठ गए।

क्रमशः .....

शोक संवेदना

एक दिव्यात्मा श्री प्रेमनारायण बाजपेयी का आज 23 मई को बैकुण्ठ वास हो गया है। गुरुदेव के परम भक्त एवं लाड़ले शिष्य थे वे। 'न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति' अर्थात न किसी से द्वेष करते थे और न ही किसी वस्तु की किसी से आकांक्षा करते थे और न ही शोक करते थे। वही भगवान के प्रिय भक्त हैं। सच्चे अर्थों में साधु थे और अविवाहित थे। उनके निधन से आश्रम वासी शोकाकुल हैं। ऐसे परम गुरुभक्त को हमारा बार–बार नमन है। कलिकाल में ऐसे साधक दुर्लभ है। श्री प्रभु जी की चरण शरण मिलेगी ही उसमें कोई शंका नहीं है। उनके परिवार वालों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

–संपादक सिद्धयोग

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

''गुरुजी देख रहे हैं''

अन्तूराम यादव, 301, न्यू मेंहदौरी, तेलियरगंज, प्रयागराज–211004

प्रातः स्मरणीय, हमारे आप के प्राण–धन, सर्वव्यापक, सर्व समर्थ, सर्व शक्तिमान, घट–घट वासी, अशरण–शरण, आनन्द कन्द, योगयोगेश्वर, अनन्त श्री दादा गुरुदेव एवं सद्गुरुदेव भगवान के पावन कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन। सभी आदरणीय भाई–बहनों को बारम्बार सादर जयगुरुदेव मैं सद्गुरुदेव भगवान का एक नालायक बच्चा हूँ क्योंकि मैं उनके आदेशों का ढंग से पालन नहीं कर पा रहा हूँ। फिर भी मैं प्रातः काल गुरुदेव के सामने कुछ समय बैठने का प्रयास करता हूँ। आज जब मैं गुरुदेव भगवान के समक्ष सुबह पाँच बजे बैठा तो बार–बार मेरे मन में एक ही भाव आता रहा और वह भाव था–''गुरुजी देख रहे हैं।'' आज मैं इसी भाव की छाया में कुछ अपने विचार आ. से साझा करने का प्रयास कर रहा हूँ।

एक बार श्री सिद्धगुफा सँवाई आश्रम पर एक उत्सव के अवसर पर गुरुदेव भगवान का प्रवचन हो रहा था। गुरुदेव भगवान इस बात पर जोर दे रहे थे कि मेरे सभी बच्चों को प्रतिदिन सुबह पाँच बजे से सात बजे तक अनिवार्य रूप से अपने गुरुमंत्र का जप करना चाहिए और साथ ही साथ चलते–फिरते, उठते–बैठते हर समय श्वास–प्रश्वास जप करते रहना चाहिए। गुरुदेव भगवान के इस प्रवचन को सुनकर अपने एक गुरुभाई ने यह निश्चय किया कि कल से मैं सुबह पाँच बजे से सात बजे तक अवश्य अपने गुरु मंत्र का जप करूँगा। सुबह जब वे जप के लिये बैठें तो थोड़े ही देर में लघु शंका के लिये उठे। उसके बाद वे अपने आसन पर बैठकर जप करने लगे। कुछ देर बाद उन्हें तम्बाकू की तलब लगी, वे तम्बाकू खाने के लिये उठे। उसके बाद पुनः वे अपने आसन पर बैठकर जप करने लगे। इस प्रकार वे किसी तरह पाँच से सात बजे तक जप करते रहे।

गुरुदेव भगवान ने शाम के समय अपने प्रवचन में बिना नाम लिये उस भाई की बड़ी तारीफ की और प्रसन्नता व्यक्त की। गुरुदेव भगवान ने कहा कि आज मेरे एक बच्चे ने मेरे आदेश का पालन करने का प्रयास किया चाहे भले ही उसे बीच में लघुशंका एवं तम्बाकू के लिये उठाना पड़ा हो। गुरु जी के इस वचन को सुनकर उस भाई को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं तो गोशाला के पास वाले बड़े हाल में बैठा था और गुरुदेव अपने कक्ष में थे तो कैसे उन्हें पता चला कि जप के दौरान मैं लघुशंका का एवं तम्बाकू के लिये उठा था। भैया, मैं (लेखक) दावे के साथ कह रहा हूँ कि कोई देख रहा हो या न देख रहा हो परन्तु ''गुरु जी देख रहे हैं''।

एक बार एक जिज्ञासु ने एक सन्त से प्रश्न किया कि सद्गुरु जब शरीर छोड़ते हैं तो कहाँ जाते हैं ? सन्त ने जवाब दिया–सद्गुरु केवल संसार से तिरोहित हो जाते हैं, मरते नहीं। जब तक

वे सशरीर इस धराधाम पर विद्यमान रहते हैं तब तक एक देशीय होते हैं परन्तु जब वे शरीर छोड़ देते हैं तब बहुदेशीय हो जाते हैं अर्थात् सूक्ष्म रूप से वे अत्र–तत्र सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। वे सूक्ष्म रूप से अपने हर एक बच्चे के साथ सदैव रहते हैं और उसकी पल–पल की गतिविधियों पर नजर रखते हैं। आवश्यकतानुसार सूक्ष्म रूप से ही किसी न किसी रूप में अपने बच्चों की मदद करते रहते हैं।

एक बार मैं हिमाचल प्रदेश में स्थित मंडी आश्रम गया हुआ था। वहाँ जाने के दूसरे दिन अचानक भयंकर पेचिश से मैं परेशान हो गया। खाना–पीना छूट गया और बहुत कमजोरी आ गई। तीसरे दिन मुझे मंडी से बस द्वारा चण्डीगढ़ आना था, उसी दिन रात में वहाँ से मुझे प्रयागराज के लिये ट्रेन पकड़नी थी। उसी अस्वस्थता की हालत में मैं मण्डी बस स्टैण्ड आया। जब टिकट लेने काउन्टर पर गया तो पता चला कि अब टिकट आनलाइन बुक होता है और अगले तीन दिन तक मण्डी से चण्डीगढ़ जाने वाली किसी भी बस में कोई सीट खाली नहीं है, बिना सीट के टिकट नहीं मिल सकता। मैं बड़े धर्म संकट में पड़ गया कि अगर आज मैं चण्डीगढ़ नहीं पहुँचा तो मेरी ट्रेन छूट जायेगी। कई बस आई, मैं अपनी मजबूरी बताकर बस में बैठने के लिये कंडक्टर से निवेदन करता था परन्तु वे मेरी एक नहीं सुने और स्पष्ट इंकार करते रहे।

धीरे–धीरे दिन ढलता जा रहा था और मेरे दिल की धड़कन बढ़ती जा रही थी। कुछ देर बाद एक बस आई और जैसे ही खड़ी हुई मैं अपना सामान लेकर पीछे के दरवाजे से बिना कण्डक्टर से पूछे बस पर चढ़ गया। जब बस चलने को तैयार हुई, मुझे पीछे खड़ा देखकर कंडक्टर ने मुझसे कहा–आप कैसे बस में चढ़ गये, उतरिए बस में जगह नहीं है। मैंने कहा–मुझे चण्डीगढ़ जाना है और किसी भी हालत में मैं बस से नहीं उतरूँगा। कण्डक्टर ने कहा–कम से कम छः घण्टे का सफर है, आप ऐसे बुजुर्ग को मैं स्टैण्डिंग में नहीं ले जा सकता। अगर रास्ते में आप को कुछ हो गया तो इसके लिये कौन जिम्मेदार होगा ? मैंने कहा–मैं लिख कर दे सकता हूँ कि अगर मुझे कुछ हो गया तो उसके लिये सिर्फ और सिर्फ मैं ही जिम्मेदार होऊँगा। मेरी जिद को देखते हुए कण्डक्टर ने टिकट दे दिया और बस चल पड़ी। अस्वस्थता की हालत में भी श्री प्रभु जी करुणा–कृपा से मुझमें इतनी हिम्मत थी कि मैं खड़े–खड़े छः घण्टे का सफर कर सकता हूँ।

बस अभी मण्डी शहर पार नहीं कर पाई थी। इसी बीच पीछे बैठा बीस–इक्कीस वर्ष का एक लड़का मेरे पास आया और बोला–बाबा! आप मेरी सीट पर बैठ जाइए। मैंने कहा–बेटा! आप परेशान न हों, मैं ऐसे ही ठीक हूँ। परन्तु वह लड़का आग्रहपूर्वक मुझे अपनी सीट पर बैठा कर स्वयं बस के फर्श पर बैठ गया। दो घण्टे तक वह फर्श पर बैठा सफर करता रहा। उसके बाद उसने अपने एक दूसरे दोस्त को इशारा किया। दूसरा लड़का बस की फर्श पर बैठ कर सफर करता रहा। ठीक दो घण्टे बाद दूसरे लड़के ने अपने तीसरे मित्र को इशारा किया। अब तीसरा लड़का बस की फर्श पर बैठ कर सफर करता रहा। इसके ठीक दो घण्टे बाद बस चण्डीगढ़ बस स्टैण्ड

पर पहुँच गई। वे तीनों लड़के पहाड़ी थे और मैं उनके लिये बिल्कुल अनजान था। जब मैं बस से उतरा तो मेरी आँखें डबडबा आई। उन बच्चों का आभार व्यक्त करने के लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं थे। तनिक विचार करें—मेरे इस संकट की घड़ी में उन अनजान बच्चों को अन्तः प्रेरणा देकर मेरी कौन मदद कर रहा था? मेरे भाई और बहन, मुझे कहना पड़ेगा—मेरे कष्टों को कोई देख रहा हो या न देख रहा हो परन्तु "गुरुजी देख रहे हैं"।

एक बार कार्यक्रम समाप्त होने के बाद एक आश्रम से प्रयागराज के लिये ट्रेन पकड़ने मैं रेलवे स्टेशन आया। अपने सामान के साथ मैं प्लेटफार्म नं. एक पर खड़ा था परन्तु मेरी ट्रेन प्लेटफार्म नं. दो पर खड़ी थी। उस प्लेटफार्म पर जाने के लिये सीढ़ियों से चढ़कर पुल पार करके जाना था। मेरे पास सामान ज्यादा था और भारी सामान लेकर मैं सीढ़ियों पर चढ़ने में बिल्कुल असमर्थ था। उस समय कोई कुली भी नजर नहीं आ रहा था। ट्रेन छूटने का समय हो गया था। मैं बड़े धर्म–संकट में था कि अब क्या करूँ। इसी बीच एक लम्बा, तगड़ा सांवले रंग का एक नवजवान व्यक्ति पैंट–शर्ट पहने हुए मेरे पास आया और बोला–बाबा! आपका सामान मैं आपकी ट्रेन तक पहुँचा देता हूँ। वह व्यक्ति मेरे लिये बिल्कुल अजनबी था। मैंने कहा—नहीं बेटा, मैं चला जाऊँगा। उसने कहा—बाबा! आप मुझे पहचान नहीं रहे हैं। मैंने कहा—बिल्कुल नहीं। तब उस व्यक्ति ने कहा—आप आश्रम से आ रहे हैं न। मैंने कहा—हाँ। वह बोला—मैं भी कार्यक्रम में आश्रम पर गया था और मैंने आप को वहाँ देखा था। आप निःसंकोच मुझे सेवा का मौका दें। मैं भी मजबूर ही था। वह मेरा सामान लेकर ट्रेन में मेरी सीट तक पहुँचाया। इसके बाद जब वह जाने लगा तो अपनी जेब से सौ रुपये का एक नोट निकाल कर मेरी गोद में रख दिया। मैंने कहा- बेटा! मेरा सामान यहाँ तक पहुँचा कर आपने मेरा बड़ा उपचार किया है, उसने कहा—बाबा! कृपा करके इसे स्वीकार कर लें और रास्ते में मेरी तरफ से फल खा लीजिएगा। यह कहते हुये प्रणाम करके वह चला गया।

तनिक विचार करें, क्या उस व्यक्ति को उसी समय मेरे पास आना था? वह व्यक्ति बिल्कुल खाली हाथ था, ऐसा बिल्कुल नहीं लग रहा था कि वह ट्रेन से कहीं जाने के लिये स्टेशन आया रहा हो। उस व्यक्ति को अन्तःप्रेरणा देकर किसने भेजा? उस व्यक्ति के माध्यम से मेरी किसने मदद की ? भाई और बहनों मुझे फिर कहना पड़ेगा कि ऐसे धर्म–संकट में मुझे कोई देख रहा हो या न देख रहा हो परन्तु "गुरु जी देख रहे हैं।"

मैं एक आश्रम पर गया हुआ था। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद मैं प्रयागराज जाने की तैयारी कर रहा था। उस दिन मैं एकादशी व्रत था। सुबह मैंने हल्का जलपान किया था, सोचा कि रास्ते के लिये आश्रम के आचार्य कुछ फलाहार की व्यवस्था करेंगे। संकोच वश मैंने भी नहीं कहा और सम्भवतः आचार्य जी को भी ध्यान नहीं रहा। फिलहाल मैं रेलवे स्टेशन आया और ट्रेन पकड़ कर चल दिया। उस दिन मुझे कुछ अधिक ही भूख का एहसास हो रहा था। जहाँ–जहाँ ट्रेन रुकती, मैं इधर–उधर देखता मगर कोई फल वाला नजर नहीं आया। रात के आठ बज रहे थे। लोग अपना

टिफिन खोलकर भोजन करने की तैयारी करने लगे। इसी बीच मेरी बगल की केबिन से एक महिला आई और मेरी सामने वाली सीट पर बैठकर भोजन करने लगी, जब कि उसकी सीट वह नहीं थी। पास में बैठी एक बूढ़ी माँ ने मुझसे कहा–बाबू, आप भी भोजन कीजिए। मैंने कहा–माताजी! आज मेरा एकादशी व्रत है। रास्ते में कहीं फल मिलेगा तो लेकर खा लेंगे। मेरे सामने वाली सीट पर बैठकर भोजन करने वाली महिला ने मुझसे कहा–बाबूजी! मेरा भी आज एकादशी व्रत है। मेरे पास फलाहार अधिक है, आप भी ले लें। मैंने कहा–नहीं बहनजी। मैं रास्ते में कहीं फल लेकर खा लूँगा। उसने कहा–बाबूजी! रात हो गई है, अब आप को कहीं फल नहीं मिलेगा।

उस महिला ने कहा–बाबूजी आप संकोच न करें। मैं गौड़ ब्राह्मण हूँ। बड़ी साफ–सफाई के साथ मैंने स्वयं मेवे के लड्डू बनाये हैं और घर से ही दो डिब्बे दही जमा कर लाई थी। मेरे मना करने के बावजूद भी आग्रहपूर्वक तीन बड़े–बड़े मेवे के लड्डू और एक डिब्बा दही मुझे देकर वह महिला अपने केबिन में चली गई। भूख से परेशान मैं लड्डू और दही खाकर पूर्ण–तृप्त हो गया। तनिक विचार करें–क्या वह महिला अपनी सीट पर फलाहार नहीं कर सकती थी? वह मेरे सामने वाली सीट पर क्यों आई और मुझे फलाहार देकर चली गई? उस महिला के इस कार्य में किस की प्रेरणा अदृश्य रूप में काम कर रही थी? भाई और बहनों, फिर मुझे छाती ठोंक कर कहना पड़ेगा– मेरी भूख की परेशानी को कोई देख रहा हो या न देख रहा हो परन्तु "गुरुजी देख रहे हैं"।

भाई और बहनों! हमें छिप कर, लोगों से निगाह बचाकर एकान्त में कभी भी इस अवश्य से कोई गलत काम नहीं करना चाहिए कि हमें कोई देख नहीं रहा है। चाहे कोई देख रहा हो या न देख रहा हो परन्तु "गुरुजी देख रहे हैं"। अगर यह भाव निरन्तर हमारे मन में बना रहेगा तो हम घृणित कार्यों से भी बचते रहेंगे और साथ ही साथ हमें, हमारे कष्टों से निकलने का मार्ग भी मिलता रहेगा।

किसी ने प्रश्न किया कि गुरुजी तो अब हमारे बीच रहे नहीं तो कैसे देख रहे हैं? इस प्रश्न का उत्तर निम्नांकित पंक्तियों में मिल जायेगा। गुरुदेव भगवान की स्पष्ट चेतावनी है–

"समझ न लेना चला गया मैं, सदा रहूँगा सबके साथ।
गुरु तिरोहित होता जगत से, मरता नहीं बात है खास।।
गुरु–मंत्र में वास है मेरा, मंत्र जपो मैं रहता साथ।
व्यर्थ कहते हो गुरु नहीं हैं, नाहक तुम क्यों होता उदास।।"

सादर जयगुरुदेव!

महर्षि पतंजलि का योग-दर्शन

–दिनेश चन्द्र शर्मा

'योग दर्शन' महत्वपूर्ण और परम उपयोगी शास्त्र है। महर्षि पतंजलि जी महाराज ने चित्तवृत्ति के निरोध को योग बताया है। चित्तवृत्तियों के निरोध से अभिप्राय है कि अन्तर्मुखता बढ़े और सत्व का विकास हो।

योग दर्शन में कुल चार पाद हैं और 195 सूत्र हैं। समाधि पाद में 51, साधनापाद में 55, विभूतिपाद में 55 और कैवल्य पाद में 34 सूत्र हैं। इस ग्रन्थ पर संस्कृत, हिन्दी सहित अनेक भाषाओं में अनेक भाष्य और ठीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। उनमें व्यास–भाष्य सबसे प्राचीन है। वृत्तियों में भोजवृत्ति प्रसिद्ध है।

योग दर्शन के पहले चार सूत्रों को चतुर–सूत्री कहा गया है। हमारे प्राचीन ऋषियों की प्राय: यह परम्परा रही है कि अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही अपना मन्तव्य बता देते हैं।

पहला सूत्र है–

''अथ योगानुशासनम्''

(अथ = अब, योगानुशासनम् = परम्परागत योग विषयक शास्त्र का आरम्भ करते हैं) इस सूत्र में महर्षि पतन्जलि ने योग के साथ अनुशासन पद का प्रयोग करके योग शिक्षा की अनादिता सूचित की है। अथ शब्द तो अधिकार और मंगल सूचक है। अनुशासन शब्द अनुबन्ध चतुष्ट्य का सूचक है। अनुबन्ध चतुष्ट्य का अभिप्राय है–विषय, प्रयोजन, अधिकार और सम्बन्ध। ग्रन्थ का विषय योग है। यह प्रथम सूत्र में बता दिया है।

योग क्या है ? यह दूसरे सूत्र में बताया है–

''योगश्चित्त वृत्ति निरोध:''

(चित्तवृत्ति निरोध: = चित्त की वृत्तियों का निरोध (सर्वथा रुक जाना), योग: = योग है) चित्त की वृत्तियों का सर्वथा रुक जाना योग है अर्थात् बहिर्मुख चित्त वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करना और उन्हें अपने कारण चित्त में लीन कर देना योग है। अभिप्राय है कि अन्तर्मुखता बढ़े और सत्व का प्रकाश हो।

योग का फल क्या है ? यह तीसरे सूत्र में बताया है–

तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्

(तदा = उस समय, द्रष्टुः = द्रष्टा की, स्वरूपे = अपने रूप में, अवस्थानम् = स्थिति हो जाती है) अर्थात् द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरुप–परमात्व स्वरूप में स्थिति। चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाने पर द्रष्टा आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

क्योंकि द्रष्टत्व की आत्मा का स्वरूप नहीं है। अपने स्वरूप में द्रष्टा, दृश्य और दर्शन कुछ रहता ही नहीं है। यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि जब दृष्टा आत्मा ही है तो क्या वह सर्वदा अपने स्वरूप में अवस्थित नहीं रहता ? इस प्रश्न के उत्तर में चौथा सूत्र है–

''वृत्ति सारूप्यम् इतरत्र

(इतरत्त = दूसरे समय में (द्रष्टा का), वृत्ति सारूप्यम् = वृत्ति के सदृश्य स्वरूप होता है) जब तक योग साधनों के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता, जब तक द्रष्टा अपने चित्त की वृत्ति के ही अनुरूप अपना स्वरूप समझता रहता है। उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता।

यद्यपि द्रष्टा स्वभाव से असंग और निर्लिप्त है, परन्तु चित्त रूपी जल की वृत्ति तरंगों से तरंगायित सा भासता है। इसलिए वृत्त्त रूप तरंगों के रहने पर द्रष्टा का चित्त सारूप्य होता है और अपने को भोक्तृत्व द्रष्टत्व शक्ति और चित्त में दृश्यत्व और भोगत्व शक्ति का अनुभव सा करता रहता है। चित्त वृत्तियों के निरूद्ध हो जाने पर वह स्वरूप में स्थित हो जाता है। जो कि योग साधना का फल है। चित्त की वृत्तियाँ असंख्य होती हैं। अतः चित्तवृत्ति निरोध रूप योग परम कर्त्तव्य है। इस चतुर–सूत्री की कारक योग दर्शन में की गई है।

योग के आठ अंग हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (साधनपाद सूत्र 29) इनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधन कहे जाते हैं। धारणा ध्यान, समाधि अन्तरंग साधन कहलाते हैं। अन्तरंग साधनों के लिये निरन्तर अभ्यास और वैराग्य आवश्यक बताये गये हैं।

यम और नियम सभी के लिये आवश्यक है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में पाँच यम योगियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें प्रतिष्ठा होने से योगी की समत्व योग की सिद्धि होती है।

अहिंसा में प्रतिष्ठा होने पर योगी के निकट सभी प्राणी वैर त्याग देते हैं।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः (साधनपाद सूत्र 35) (अहिंसा प्रतिष्ठायां = अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर,) तत सन्निधौ = उस योगी के निकट, वैर त्यागः = सब प्राणी वैर त्याग कर देते हैं) ग्रन्थों में अनेक वर्णन मिलते हैं कि ऋषियों-मुनियों के आश्रमों में वन के प्राणी समान भाव से रहा करते थे। रामचरित मानस में गोस्वामी, तुलसीदास जी ने वाल्मिकी आश्रम का वर्णन करते हुए लिखा है-

खग मृग विपुल कोलाहल करहीं, विरहित वैर मुदित मन चरहिं।

चित्रकूट की स्थिति के बारे में उन्होंने लिखा है-

बयरू विहरू चरहिं एक संगा, जहँ तहँ मनहु सेन चतुरंगा।

यम नियम की साधनाओं का आधार भूत अहिंसा है। भगवान काल देव जी ने अहिंसा का अर्थ बताते हुये बताया है कि अहिंसा के अतिरिक्त शेष यम-नियम अहिंसा की पुष्टि के लिये ही हैं।

इसी प्रकार-

सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रमत्वम् (साधन पाद सूत्र 36)

सत्य प्रतिष्ठायां = सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर योगी में, क्रिया फलाश्रयत्वम् = क्रिया फल के आश्रम का भाव आ जाता है। ऐसी स्थिति आ जाने पर योगी जिसको जो वरदान, शाप या आशीर्वाद देता है वह सत्य हो जाता है। इसी प्रकार से योग दर्शन में ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के फल बताये हैं।

साधन पाद के सूत्रों में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान, इन नियमों के स्वरूप और फल भी बताये गये हैं। आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार का स्वरूप बताया है। इन साधनों से इन्द्रियों की बहिर्मुखता समाप्त हो जाती है।

आसन की सिद्धी से प्राणायाम में सफलता मिलती है। प्राणायाम से प्रत्याहार की सिद्धि होती है। प्रत्याहार के द्वारा चित्त को अन्तर्मुखी किया जाता है। धारणा में चित्त को किसी एक विषय पर लगाया जाता है और ध्यान से केवल वृत्ति पर। समाधि में ध्याता, ध्येय और ध्यान का भेद भी समाप्त हो जाता है।

व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए योग लाभकारी है। योग साधना किसी योगी के मार्ग निर्देशन में ही करनी चाहिए।

योगाभ्यासी के लिए धारणा

श्री स्वामी अभयानन्द

योग का अभ्यास करने वाले मनुष्य के सामने कई प्रकार की परीक्षाएँ अथवा विघ्न आते हैं। अगर मनुष्य को निम्नलिखित बातों में निश्चय हो अथवा यदि निम्नलिखित धारणाएँ उसके जीवन में हों तो उसे योग में अच्छी स्थिति प्राप्त हो सकती है–

1. पवित्रता, शान्ति और परमात्मा ही सच्चे आश्रय हैं–

आज कोई मनुष्य स्वयं को हिन्दू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई और कोई अन्य किसी धर्म को मानता है, परन्तु योगी तो 'पवित्रता और शान्ति' को ही अपना स्वधर्म निश्चय करता है अथवा वह आदि सनातन 'देवी–देवता धर्म' का ही अपना धर्म मानकर पवित्र शान्त और दैवी गुण–सम्पन्न बनने का पुरुषार्थ करता है।

ज्ञान–रहित भक्त मनुष्य तो अपने शास्त्र, गुरु, कर्म–काण्ड इत्यादि को ही कल्याणकारी समझकर उनमें लगा रहता है। परन्तु जो योग का अभ्यास करना चाहता है वह केवल परम पिता परमात्मा ही को कल्याणकारी मानकर, उनमें ही अपना मन लगाता है, उसे कर्म–काण्ड आदि भी थोथे लगते हैं। वह इन सब आधारों को छोड़कर एक परमपिता परमात्मा ही का आश्रय लेता है और सच्चे हृदय से उन्हीं की शरण में जाता है। वह लौकिक गुरुओं और पोथियों के भरोसे पर नहीं चलता बल्कि निराकार परमात्मा ही के एक बल, एक भरोसे पर चलता है, क्योंकि वह समझ जाता है कि काम, क्रोध इत्यादि बली विकारों पर विजय प्राप्त कराने का बल केवल एक सर्व शक्तिमान परमात्मा में ही है, अन्य किसी में नहीं। उनका मन अन्य सबसे हट जाता है और अत्यन्त स्नेह से एक परमपिता परमात्मा से जुट जाता है अथवा जुटना चाहता है। वह मन–मत और गुरु–मत इत्यादि की भेंट में एक निराकार परमपिता ही के मत को सर्वश्रेष्ठ निश्चय करता है और संसार के लोग चाहे उसे कितना भी रोकते और टोकते रहें, वह मस्त–कलन्दर की तरह प्रभु ही का हो जाता है।

मनुष्य की इसी वृत्ति को ही "सर्वोत्तम संन्यास वृत्ति" कहते हैं, क्योंकि भगवे कपड़े वाले संन्यासी तो केवल घर–बार और वस्त्रों ही का संन्यास करते हैं किन्तु थोथी पंडिताई से उनका मोह नहीं टूटता, परन्तु सच्चा संन्यासी तो मित्र–सम्बन्धियों के बीच रहते हुए भी 'ममता' का संन्यास करता है और उनका मन और कहीं न जाकर एकमात्र परमात्मा ही की ओर जाता है। गृहस्थ में रहते हुए योगाभ्यास करने के लिए ऐसी ही वृत्ति अथवा ऐसा ही संन्यास होना जरूरी है।

2. परमात्मा की सतयुगी रचना सुखदायी होती है–

मिथ्या–ज्ञानी मनुष्य यह मानता है कि सुख और दुःख दोनों परमात्मा ही देते हैं, परन्तु योगी सदा इसी निश्चय से रहता है कि परमात्मा तो कल्याणकारी है, जो सुखदाता और

शान्तिदाता है, वह तो दुःख–भंजक है, वह किसी को भी दुःख नहीं देते। दुःख तो माया अथवा मनुष्य के अपने किये हुए पापों ही का परिणाम है। परमात्मा तो मुक्ति और ओदमुक्ति के दाता है, वही तो सद्गतिदाता है। यह जो दुःख, दरिद्र और दुर्गति की दुनिया है इसके रचयिता परमपिता। परमात्मा नहीं हैं बल्कि वे तो सम्पूर्ण सुख और शान्ति वाली सतयुगी और त्रेतायुगी दुनिया के रचयिता हैं। जिसे 'स्वर्ग जीवन्मुक्त दुनिया' अथवा 'बैकुण्ठ' कहते हैं। परमात्मा तो मनुष्यात्मा को दुःखी दुनिया से दूर मुक्तिधाम में वहाँ से मनुष्यात्माएँ यहाँ आई हैं, वापस ले जाते हैं। अतः अज्ञानी मनुष्य जिन परिस्थितियों में भगवान् को भी बुरा–भला कहता है और उस पर दोष धरता है, योगी उन परिस्थितियों में निस्संकल्प रहता है और परमआत्मा को और मुक्तिधाम तथा जीवन्मुक्ति धाम को अधिक ही याद करता है क्योंकि उसका यह अटूट निश्चय होता है कि सभी संकट अपने ही विकर्मों के कारण सामने आते हैं और परमात्मा तो संकट–मोचन हैं। अतः वह खूब दिल से परमपिता परमात्मा से प्यार करता है, कारण कि वह जानता है कि वह वही तो इनसे छुड़ाने वाले हैं और वही तो मुक्तिधाम और जीवन्मुक्तिधाम में चलने वाले हैं।

3. भावी अथवा नियति में निश्चय–

अज्ञानी मनुष्य छोटी–सी आपदा आने पर अथवा कुछ भी विपरीत परिस्थिति होने पर घबरा जाता है, दुःखी होने लग जाता है और अपने शांति रूपी स्वधर्म को छोड़ देता है, परन्तु योगी का यह निश्चय दृढ़ रहता है कि हमें कर्म ही करना चाहिए, उसके फल के लिये आकुल–व्याकुल नहीं होना चाहिए। योगी जानता और मानता है कि भावी बनी हुई है अथवा इस सृष्टि रूपी विराट नाटक की एक नियति (Pre-ordained Plan) है, उसके अनुसार ही सब कुछ हो रहा है। अतः चिन्ता करना, व्याकुल होना या दुःखी होना मूर्खता है। वह जानता है कि परमात्मा ही की याद में रहने से बिगड़ी भी संवर जाती है अथवा सहन करने की शक्ति मिलती है। अतः वह व्यथित न होकर योग–युक्त होता है। वह 'हाय–हाय' न करके 'हरि–हरि' करता है, वह 'मरा–मरा' न बोलकर 'राम–राम' की स्मृति में रहता है। वह सृष्टि के आदि–मध्य–अन्त के राज को समझने के कारण नाराज (ना–राज) नहीं होता। जो मनुष्य भावी अथवा नियति (Pre-determined or Per-ordained Plan of this Drama) में निश्चय नहीं करता, उसकी अवस्था अडोल नहीं हो सकती। उसकी समाधि सहज और सुदृढ़ नहीं हो सकती, उसका योग अटूट और अखण्ड अथवा निरन्तर निर्विघ्न नहीं हो सकता। संसार के कलह क्लेश अथवा हानि–लाभ, निन्दा–स्तुति उसी के लिए विशेषता का रूप धारण करते हैं जो इस संसार की विधि–विधान को अथवा उसकी भावी और नियति को नहीं जानता। वरना जो 'भावी' में निश्चय रखता है, वह एक–रस अवस्था में रहता है। उसका मन योग के सिंहासन से कभी नीचे नहीं उतरता, उसकी निष्ठा कभी भंग नहीं होती। बल्कि उसका मन परमात्मा पर एक टक हो जाता है और हुआ ही रहता है।

4. परिवर्तन और परिणाम–

योगी जीवन का आनन्द चाहने वाले मनुष्य का यह निश्चय भी अटूट रहना चाहिए कि

इस संसार की सभी चीजें नश्वर हैं और यहाँ के सभी पदार्थ परिवर्तनीय हैं। अज्ञानी मनुष्य इस बात को भूल जाता है अथवा वह इस बात को व्यवहार में नहीं लाता। इसलिए जब उसका कोई संबंधी शरीर छोड़ता है तो वह रोने लगता है, जब कुछ धन की हानि होती है तो वह उदास हो जाता है। वह यह याद नहीं रखता कि परिवर्तन तो इस संसार के पत्ते–पत्ते पर लिखा हुआ है। परिणाम अथवा विनाश तो इस लोक के कण–कण में अंकित है। इसका नाम ही 'संसार' अर्थात् 'चलने वाला' अथवा 'जगत्' अर्थात् 'गति वाला' है। यहाँ कोई भी चीज वैसी की वैसी नहा रहती है बल्कि सब कुछ बदलता जा रहा है। जो मनुष्य योगी होता है वह इस बात को याद रखता है और इसलिए हानि–लाभ अथवा निन्दा–स्तुति की परिस्थिति में एक–समान रहता है, क्योंकि उसका यह निश्चय होता है कि यह परिस्थिति भी परिवर्तन के चक्कर में आयेगी ही, यह भी रहनी नहीं है। वह संसार का परिणामी और क्षण–भंगुर मानकर अपने मन को अपरिवर्तनीय तथा एक–रस परमपिता परमात्मा ही में टिकाकर स्थायी सुख लेने का पुरुषार्थ करता है। वह समय को व्यय नहीं खोता, क्योंकि वह जानता है कि उससे शरीर भी परिवर्तनशील और परिणामी की है और किसी भीसमय उसका अस्त ही सकता है। अतः वह शरीरान्त से पहले प्रभु का प्यार, परमात्मा का प्रेम अथवा उससे पवित्रता का लाभ उठाते रहने की धुन में लगा रहता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि योगाभ्यास में निश्चय का बड़ा महत्व है। कहावत है कि मनुष्य का जैसा निश्चय (Faith) हो वैसा ही उसका रूप (Form) होता है। निश्चयभेद होने के कारण ही मनुष्य–मनुष्य में अथवा देवता और देवता में भेद हो जाता है। इस लिए गीता में भगवान् के महावाक्य हैं कि मनुष्य का जैसा निश्चय हो, वैसा ही वह स्वयं होता है। अतः ऊपर जो रहस्य स्पष्ट किये गये हैं, जब उनके अनुसार मनुष्य इसी निश्चय में स्थित होता है कि–मैं तो आत्मा हूँ, त्रिलोकीनाथ, सर्व शक्तिमान, ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम सागर, परमपिता परमात्मा की सन्तान हूँ। पवित्रता और शान्ति ही मेरा स्वधर्म है अथवा देवी–देवता धर्म अथवा दिव्य–गणों की धारणा मेरा धर्म (कर्त्तव्य) है और यह अन्दर से है। हमारा कर्त्तव्य इतना है कि उसे स्वस्थ दिशा में मोड़े। चेतना का विकास मात्र सत् (आत्मा) है न कि यह शरीर। योग का उद्देश्य है, मानव–चेतना–आत्मा को व्यक्तित्व की अन्य शक्तियाँ और क्षमताओं का स्वामी बनाना। मानव आज संक्रमणावस्था में है। पाशविकता से मानवी होते हुए दैवी होने तक उसकी यात्रा है। दैवी स्थिति यानी सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की परिणति। मानव को यह केन्द्रीय तथ्य समझ लेना चाहिए और उन उपलब्धियों के चरम बिन्दु की ओर पहले से ही कार्यरत विकासशील शक्तियों का साधन बन जाना चाहिए।

सत्य और वाक्-सिद्धि

योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सत्य के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करते हुये योगदर्शन में भगवान् व्यासदेव ने निम्नांकित पंक्तियाँ लिखी हैं–

सत्यं यथाऽर्थे वाङ्गमनसे, यथा द्रष्टं यथाऽनुमिते यथा श्रुतं तथा वाङ्मश्चेति, परत्र स्वबोध सङ्क्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्तावा प्रति प्रति बन्ध्या वा भवे दिति एषा सर्व भूतोपकारार्थ प्रवृत्ता न भूतोपघाताय यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघात परे व स्याझ सत्यं भवेत्, पापमेव भवेत्, तेन पुण्याभासेन पुण्य प्रतिरूपकेण कष्टतम प्राप्नुयात।।

अर्थात् यथार्थ वाणी जैसी देखी, सुनी व अनुमान की हुई, दूसरों को अपना अर्थ समझाने के लिये न वचना से युक्त, न भ्रान्ति–युक्त व न अस्पष्टार्थ कही हुई, जो प्राणिमात्र के परोपकार के लिये मनसा–वाचा–कर्मणा सत्य प्रयुक्त होती है वही वाणी सत्य कहलाती है। इसी के द्वारा प्राणिमात्र का भला होता है। इसलिये सत्यवादन अहिंसा की निर्मलता के लिये और इसी प्रकार अस्तेय आदि जो है वे भी अहिंसा की निर्मलता के लिये, अन्य सब प्रकार के व्रताचरण अहिंसा धर्म को ही परिपुष्ट करते हैं। यह अहिंसा किसी जाति, किसी देश और किसी काल व समय से युक्त नहीं और सार्वभौमिक अहिंसा हो तो महाव्रत कहलाती है। यथा भगवान् पतंजलि के शब्दों में–

जाति देश काल समयानवच्छिन्ना सार्वभौमा महाव्रतम्। *(योगसूत्र 2/31)*

सत्य के लिये उपनिषदों में बड़े–बड़े शब्द मिलते हैं।

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म। *(तैति. 2/1/1)*

सत्य प्रभु का रूप है व वाणी का तप है।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मासम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अंतः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो य पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।
सत्यमेव जयते नानृत सत्येन पन्था विततो देवयान।।

अर्थात् जो सत्य, ज्ञान, ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अन्तः शरीर में शुभ्र ज्योतिर्मय आत्मा को देखता है, जिसको दोषों को क्षीणकर यति लोग मुश्किल से देख पाते हैं। हमेशा सत्य की ही जय होती है। देवों का मार्ग सत्य से विस्तृत है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने श्री मद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक में सत शब्द ब्रह्म का नाम बतलाया है। यथा–

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।

अर्थात् ॐ तत् सत् यह तीन प्रकार का ब्रह्म का ही नाम है। व इसी के द्वारा वेद, यज्ञ व ब्राह्मणों का विधान हुआ। इसी प्रकार का संकेत उपनिषदों में स्थान–स्थान पर भरा है। सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तैत्ति. 3–2–1–1) सत्य ब्रह्म–वृहदारण्यक उपनिषद् 5–5–1 अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है।

श्री विष्णु सहस्त्र नाम में भगवान को–

सत्यः सत्यं पराक्रम कहकर स्तुति की गयी है। श्री मद्‌भगवत पुराण के दशम स्कंध के दूसरे अध्याय में गर्भ–स्तुति के वर्णन में श्री भगवान् कृष्णचन्द्र को परम सत्य व सत्यात्मक शब्दों से सम्बन्धित करके स्तुति की है। यथा–

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रित्सत्यं सत्यस्ययोनि निहितं च सत्ये।
सत्यस्यसत्यामृत सत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरण प्रपन्नाः।।

अर्थात् हे प्रभो! आप सत्य व्रत सत्यपरायण व तीनों कालों मे परम सत्य हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का मुख्य साधन है। क्योंकि आप सत्यात्मक हैं।

उन सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दघन प्रभु का स्वरूप सत्य है। वे स्वयं सत्य है, सत्य स्वयं परब्रह्म है। सत्य की महाशक्ति का वर्णन करते हुये हमारे पूर्वजों ने बड़े ऊँचे स्वर से कह दिया कि–

सत्येन वायुरवाति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्यं वाचः।
प्रतिष्ठा सत्ये सर्व प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं पर बदन्ति। *–नारायणोपनिषद् 76*

सत्य ही जय का मुख्य साधन है।

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पंथा वितत‍ो देवयानः।
येना क्रमन्त्यृषयो ह्यप्त कामाः यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानं।।

–मुण्डकोपनिषद् 3–1–6

अर्थात् सदा–सर्वदा सत्य की ही जय होती है। इस सत्य का अवलम्ब लेकर ऋषिजन आप्तकाम हो गये व उस सत्य के परम प्रतिष्ठारूप प्रभु को सरलता से प्राप्त कर लिया। भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के बनवास हो जाने के बाद उनको लौटाने के विचार से गये हुये वशिष्ठ वामदेव आदि गुरुजनों के प्रति सत्य की महिमा को ह्रदय में धारण करते हुये श्री रामचन्द्रजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा–

सत्यंमेवानृशसं च राजवृत्त सनातनम्।
तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्यो लोके प्रतिष्ठितः।
ऋषलश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी ही लोकेस्मिन परं गच्छति चाव्ययम्।
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतबादिनः।
धर्म सत्य परो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।

सत्य मूलानि सर्वाणि, सत्यान्नास्ति परमपदम्।
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्य प्रतिष्ठाना स्तस्मात्सत्यपरो भवेत्।

–वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड सर्ग 1 10 14)

अर्थात् सत्य ही सनातन राजवृत्त है। राज्य की व लोक की सत्य ही में प्रतिष्ठा है। ऋषि–मुनि व देवता सभी ने सत्य को माना है। यही सनातन धर्म है। सत्यवादी ही इस लोक में अव्यय पद को प्राप्त करता है। जिस प्रकार मनुष्य सर्प से डरते हैं इसी प्रकार अनृतवादी से डरना चाहिए। क्योंकि इस संसार में सत्य ही परम तत्त्व है व सभीशुभों का मूल है।

इस लोक व परलोक में सत्य ही ईश्वर है। धर्म सदा सत्य के आश्रित है। सत्य विश्व का मूल है। सत्य के बढ़ का कोई तत्व नहीं है। सत्य ही परम तत्व है। सभी दान, अनुष्ठान, यज्ञ व तप सत्य से आधारित हैं। इसी प्रकार चारों वेद सत्य द्वारा ही प्रतिष्ठा पाने वाले हैं। अतः कल्याण चाहने वालों को सत्यपरायण होना चाहिए। इस प्रकार सत्य की महान् महिमा को बतलाकर भगवान् श्री रामचन्द्र जी अपने व अपने पिता जी के सत्य वचन के पालनार्थ अयोध्या नहीं लौटे।

ठीक इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने अपनी रामायण में स्पष्ट लिखा है–

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये, वेद–पुरान विदित मनु गाये।
धर्म न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना।
नहिं असत्य सम पातक पुंजा, गिरि सम होई कि कोटिक गुंजा।

इसी प्रकार अन्य सन्तों की वाणियों में भी सत्य की महान् महिमा का वर्णन कूट–कूट भरा पड़ा है।

जाके हृदय साँच है, वाके हृदय आप।

अर्थात् जिसके हृदय में सत्य है, वहीं प्रभु का भी वास है। ठीक यही भाव महा–भारत में व अन्यान्य आर्षग्रन्थों में भरे पड़े हैं।

अश्वमेध सहस्त्रं च, सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेध सहस्त्रेभ्यः सत्यमेव विशिष्यते।
सर्ववेदाधिगमनं, सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्यं च बचनं राजन्, समं वा स्यान्नैवासमम्।
नास्ति सत्य समो धर्मो, न सत्याद्विशिष्यते परम्।
न तीब्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते।

–महाभारत आदिपर्व 74–10–105

अर्थात् सहस्त्रों अश्वमेध यज्ञ की तुलना करें तो सत्य ही उत्कृष्ट है। इसी प्रकार सारे वेदों का पढ़ना, तीर्थ–स्नान, सत्य की तुलना में नहीं आ सकते। सत्य के समान कोई धर्म

नहीं है व असत्य के समान घोर पातक नहीं है।

महाभारत के शांतिपर्व के 162वें अध्याय में श्री भीष्म पितामह ने बड़े ऊँचे शब्दों में सत्य का व्याख्यान किया और अन्त में यहाँ तक कह दिया कि—

नान्तो शब्दों गुणानां च वक्तुं सत्यस्य पार्थिव।
अतः सत्यं प्रशंसन्ति विप्रा सपितृ देवता।

इसी प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व में—

सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्नि प्रदीप्यते।
सत्येन मारुतो वान्ति सत्ये सर्व प्रतिष्ठितम्।
सत्येन देवा प्रीयन्ते पितरो ब्राह्मणास्तथा।
तस्मादाहु परो धर्मस्तस्मात्सत्यन्नलंघयेत।
मुनयः सत्य निरताः मुनयः सत्य विक्रमाः।
मुनयः सत्य शपथा स्तस्मात्सत्यं विशिष्यते।

अर्थात् सत्य की महिमा का वर्णन कहाँ तक करें। सब ऋषि–मुनि देवता स्थान स्थान पर सत्य की ही महिमा गाते हैं। सत्य से सूर्य तपता है। सत्य से वायु बहती है, अग्नि तपती है। सत्य से ही सब प्रतिष्ठित हैं। देव लोग, मुनि, ब्राह्मण सत्य से प्रसन्न होते हैं। अतः कभी भी सत्य का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। सब ऋषि–मुनियों का बल सत्य ही है। इसी प्रकार के भावों से वेद–शास्त्र व पुराण भरे पड़े हैं।

श्री मनुजी महाराज ने अपनी मनुस्मृति के अध्याय आठ के 96वें श्लोक में निशंक सत्यवादी को बड़ा ऊँचा महत्व दिया है। यथा—

यस्य विद्वान हि बदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते।
तस्मान्न देवा श्रेयांसो लोके अन्यं पुरुषं विदुः। *—मनुस्मृति अध्याय 8 श्लोक 96*

अर्थात् निशंक सत्यवादी का देवता लोग भी परम आदर करते हैं और उसको बड़ा मानते हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति के चौथे अध्याय में प्रिय एवं सत्य बोलने को ही सत्य सनातन धर्म बतलाया है।

एक महात्मा का दृष्टान्त :

एक स्थान पर एक महात्मा निवास करते थे। उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था कि वे मनसा वाचा कर्मणा सत्यवादी रहेंगे और अपने नियमानुसार उन्होंने सत्यव्रत का पूर्णरूपेण पाल किया। वह महात्मा यह अनुभव करते थे कि जो वाणी मुख से निकालेंगे वह सत्य ही होगी वे महातम अपने मुख से जो भी शब्द कह दिया करते, प्रभु की पूर्ण कृपा से वे शब्द यथार्थ हो जाते थे। सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफला श्रयत्वम 'पतंजलि योग दर्शन का यह सिद्धान्त उनके जीवन में पूरा घटित हो गया था। उपर्युक्त सूत्र का अर्थ है जो व्यक्ति सत्य प्रतिष्ठा होता है अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा जो सत्य का पालन करता है, उसकी वाणी–क्रिया फलवती हो जाती है अर्थात् वाणी से जो कुछ वह कहा करता है प्रकृति उसको स्वीकार कर

लेती है। वह परिणामस्वरूप सत्य तत्काल दिखाई देने लगता है। इसी सिद्धान्तानुसार वे महात्मा अपने मुख से जो कुछ भी कहते वह तत्काल हो जाया करता था। महात्मा का जन्म पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। वे पूर्ण सत्यप्रतिष्ठ एवं सदाचारी थे।

एक बार वे योग–प्रचार करते हुये रोहतक प्रान्तान्तर्गत किसी गाँव में गये। वहाँ पर एक ब्राह्मण बालक को भूतोन्माद की बीमारी लगी हुई थी। उसका इलाज उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति से किया और उसे आराम हो गया जिसके फलस्वरूप उनके सत्संग का उस गाँव में काफी प्रचार हो गया। उस गाँव में यह महात्मा लगभग पन्द्रह–बीस दिन रहे। इसके बाद दूसरे गाँव में यह महात्मा लगभग पन्द्रह–बीस दिन रहे। इसके बाद दूसरे गाँव में जाने के लिये उन्होंने अपनी तारीख निर्धारित कर दी। माघ का महीना था, सर्दी काफी पड़ रही थी। महात्मा को सुबह चार बजे उठकर उस गाँव से लगभग चार या छः मील पर एक बस स्टेशन पर पहुँचना था, जहाँ से बस में बैठकर उन्हें पानीपत जाना था और पानीपत निर्धारित समयानुसार यदि वे प्रातः 9 बजे तक पहुँच जाते तो निश्चित स्थान पर जाने वाली रेलगाड़ी पकड़ी जा सकती थी विलम्ब हो जाने पर वह गाड़ी नही पकड़ी जा सकती थी। हुआ भी ऐसा ही। अपने निर्धारित समयानुसार उस ग्राम से प्रातः चार बजे चलना था। पर अकस्मात् उस दिन वर्षा आरंभ हो गयी और वर्षा के साथ ओले भी गिरने शुरू हो गये। माघ का महीना अत्यन्त शीत प्रधान था ही उसमें साथ–साथ ओले गिरने से बड़ा ही भयंकर समय उपस्थित हो गया। ऐसी स्थिति में वहाँ से चलना किस प्रकार संभव हो सकता था। किन्तु महात्मा सत्यवादी थे अपने वचन की रक्षा के लिये ऐसी स्थिति में भी चलने को तैयार हो गये। गाँव वालों ने उनको बहुत मना किया। सवारी भी कोई जा नही सकती थी।

महात्मा ने गाँव वालों से कहा कि हमारा बिस्तर और शेष सामान तुम बाद में पहुँचा देना। स्वयं अपने वचन का पालन करने के लिये ठीक चार बजे वहाँ से एक छाता लेकर निकल पड़े। गाँव वालों ने बहुत आश्चर्य से देखा कि महात्मा जी आधा फलांग भी जा नहीं पाये थे कि अचानक ही वर्षा बन्द हो गयी–ओले भी गिरने बन्द हो गये। बादल फट गये। चाँद खिल उठा। गाँव के लोग महात्मा जी का बिस्तर लेकर चल पड़े, किन्तु रास्ता पानी का था, इसलिए बस स्टैण्ड पहुँचते–पहुँचते लगभग दस बज गये। उनके पहुँचने के पहले दो–तीन बसें निकल चुकी थीं। किसी तरीके से भी वह गाड़ी पकड़ लेना संभव नहीं था, जिसमें उन्हें पानीपत होकर जाना था। किन्तु अपने वचन का प्रमाण रखते हुये महात्मा वहाँ से एक बस में सवार हो गये। उनके साथ ही दो–एक सत्संगी भी चले। जिस समय वे पानीपत से रेलवे–लाइन को पार करने लगे लोगों ने आश्चर्य से देखा कि जिस गाड़ी में उन्हें सवार होना था वह खड़ी है और चलने के लिये सीटी दे रही है। महात्मा जी से सत्संगी कहने लगे कि गुरुजी! यह गाड़ी दो घंटे लेट हो गयी, मिलेगी भी नही आपको। किन्तु महात्मा जी ने अपने साहस को नही छोड़ा। वे स्टेशन पर चले गये और फुर्ती से जाकर गाड़ी में बैठ गये। उनके एक सत्संगी ने टिकट खरीद कर उनको दे दिया। ज्यों ही टिकट महात्मा जी के

हाथों में आया, त्यों ही गाड़ी चल पड़ी और अपने वचननुसार वे गम्य स्थान पर ठीक समय पर पहुँच गये। यह महात्मा जी की सत्य संकल्पता–का ही शुभ परिणाम था।

इससे भी अधिक सत्य प्रतिष्ठिता और भी ऊँची होती है। महातम के सत्य में थोड़ा–सा अभाव हो गया था, इसलिए बीच में थोड़ा सा अन्तरायरूप वर्षा–ओले इत्यादि आ गये अन्यथा सत्यवादी का सत्य तो इतना उत्कृष्ट है कि वचन कह देने पर उसके रास्ते में कोई अन्तराय हो ही–नहीं सकता थी।

सत्य को साधना की पराकाष्ठा सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी भूमिका में जाकर होती है। सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरा भूमिका का नाम है–अस्मितानुगतसमाधि। जिस समय योगी योगाभ्यास करना आरंभ करता है, तो वह सम्प्रज्ञात योग की पहली भूमिका में अपना कदम बढ़ाता है। सम्प्रज्ञात समाधि का लक्षण करते हुये भगवान पतंजलिदेव ने एक सूत्र का उल्लेख किया है और वह है इस प्रकार–

वितर्क विचारानन्दास्मिता नुगमात संप्रज्ञातः।

अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि के चार अंग हैं। जिसमें 'वितर्कश्च चित्तस्य आलम्बने स्थूला भोगः' अर्थात् वितर्कानुगत समाधि में योगी अपने चित्त को स्थूल विषयों में धारणा करके एकाग्र करता है। यह समाधि सिद्ध हो जाने के बाद दूसरी समाधि की भूमिका अपने आप प्रारम्भ हो जाती है। जिसको शास्त्रीय परिभाषा में विचारनुगम योग या विचारानुगत समाधि कहते हैं। यह संप्रज्ञात योग की दूसरी भूमिका है। पहली भूमिका में स्थूल विषयों का साक्षात्कार करता हुआ योगी भूमण्डलान्तर्गत दृश्यों को अधिक मात्रा में देखता है। इसलिए इस समाधि का नाम विलर्कानुगत याग या वितर्कानुगत समाधि कहा गया है। यह समाधि सिद्ध हो जाने के बाद योगी को दूसरी श्रेणी की भूमिका अपने आप आरंभ हो जाया करती है। उस समाधि का नाम विचारानुगत समाधि है। विचारानुगत समाधि प्रथम श्रेणी की समाधि वितर्कानुगत योग की अपेक्षा सूक्ष्म है और इस समाधि का अभ्यास करता हुआ योगी लोक–लोकान्तरों के दृश्यों को अधिक मात्रा में अनुभव करता है इसलिए इसका नाम विचारानुगत योग है। जब योगी इस समाधि की पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो उसके आगे आनन्दानुत समाधि की तीसरी भूमिका स्वतः ही आरंभ हो जाया करती है। आनन्दानुगत समाधि का अर्थ है–

'आनन्दोऽह्लादः'

अर्थात्–इस समाधि में मनुष्य को परम आह्लाद होता है। वह अखण्ड मण्डलाकार व्यापक स्वरूप में परम आह्लद के साथ विचरण किया करता है। जब यह समाधि पराकाष्ठा पर पहुँचती है तो उस समय सम्प्रज्ञात योग की चौथी भूमिका अस्मितानुगत योग स्वतः ही आरम्भ हो जाता है। और उस अस्मितानुगत योग में योगी को दो प्रकार की ताकतें अनायास ही प्राप्त हो जाया करती है। पहली शक्ति चित्त निर्माण की योग्यता अर्थात् इस समाधि में चित्त निर्माण की पूरी–पूरी योग्यता योगी को प्राप्त हो जाया करती है। वह योगी चाहे तो

अपने हजारों चित्र बनाकर एक साथ हजार व्यक्तियों के साथ बातचीत कर सकता है। हजारों से मिल सकता है और हजारों पर अपना प्रभाव कायम कर सकता है। इस अस्मितानुगत समाधि में दूसरी शक्ति ऋतम्भरा प्रज्ञा की है। भगवान पतंजलिदेव कहते हैं–**'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'** ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ है–**'ऋतं सत्यं विभर्तिया सा ऋतम्भरा'**।

इस समाधि में योगी को इस प्रकार सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जिसमें ऋत का वास हुआ करता है। वह योगी जो कुछ सोचता है सत्य सोचता है जो करता है सत्य करता है। यदि उसके मन में विचार आता है कि अमुक स्थान में वर्षा हो रही है तो वर्षा हो ही रही होती है अन्यथा यह विचार आयेगा ही नहीं। उसके सभी संकल्प सत्य होते हैं। उस योगी के मन में असत्य लवलेश मात्र को नहीं रह पाता। वह सत्य संकल्प बन जाता है।

सम्प्रज्ञात समाधि की साधना की पराकाष्ठा ऋतम्भरा प्रज्ञा में ही होती है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा वस्तुतः समाधि की साधना से साधक को प्राप्त हुआ करती है किन्तु जो मनुष्य मनसा–वाचा कर्मणा सत्यवादी है एवं सत्यवादिता का पूर्ण अभ्यास करता रहता है, उसे तीनमास के अभ्यास के बाद ही अपनी वाणी में बल मालूम पड़ता है और जो कुछ कह दिया करता है वह सत्य होने लगता है। सत्य–वादन के एक साल के अनवरत अभ्यास करने से योगी को वाक्–सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। उसकी वह सत्यवादिता वरदान का काम करती है। तीन महीने के सत्य बोलने के अभ्यास हो जाने के बाद असत्य स्वाभाविक ही पीछे हट जाता है। यदि कोई असत्य बोलने का मौका उसके सामने आता है तो योगी के हृदय में एक विशेष प्रकार का कम्पन–सा आरम्भ हो जाता है और वह सोचने लगता है कि मेरी वाणी से कोई असत्य शब्द न निकल जाये, जो मेरे सत्य पर आघात पहुँचाने वाला हो।

गोस्वामी तुलसीदास जी के कथनानुसार सत्य मूल सब सुकृत सुहाये। संसार का प्रत्येक कार्य सत्य पर आधारित रहता है। सत्यवादी के हृदय में स्वतः ही ईश्वर का वास हो जाया करता है। जाके हृदय साँच है वाके हृदय आप।

इसलिये परम श्रेयाभिलासी साधक को चाहिए कि जहाँ वह अन्यान्य साधनाओं का अभ्यास करता है वहाँ उसका सत्य बोलने का अभ्यास भी पूर्णारूपेण होना ही चाहिए। ऐसा हो जाने के बाद उसके हृदय में स्वतः ही प्रकाश रहने लगता है और वह दिव्यानुभूतियों का पात्र बन जाता है। किन्तु एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए वह यह कि मनुष्य को सत्य तो बोलना चाहिए किन्तु प्यारा सत्य बोलना चाहिए। कटु सत्य में अनेक प्रकार की हानियाँ निहित रहा करती हैं। किन्तु योगी अपने सत्य के बल के प्रभाव से बहुत बड़ी प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह मनसा–वाचा–कर्मणा सत्य बोलने का अभ्यास करें।

विद्यार्थी जीवन में योग का महत्व

श्री रामसजीवनसिंह ऊँचामण्डी, इलाहाबाद

जीवन बिगड़ा छात्र का, इसको समझे कौन।
शिक्षण का क्या रूप हो, इस पर हैं सब मौन।।
इस पर हैं सब मौन छात्र कैसे बन पावै।
मेधावी या चरित्रवान कैसे बन पावै।।
खानपान व्यवहार बिगड़ता जाता प्रतिदिन।
योग-मार्ग ही बना सकेगा पावन जीवन।।

वैदिक काल में हमारा देश आर्यावर्त के नाम से विख्यात था। उस समय योग-साधना कराते हुए विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी। बुद्धि इतनी कुशाग्र हो जाती थी कि अल्प काल में वेद और शास्त्र सब कंठस्थ हो जाते थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस में लिखा है-

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई।
अल्प काल विद्या सब पाई।।

उपरोक्त चौपाई से पता चलता है कि राजा दशरथ के पुत्र राम वशिष्ठ गुरु के पास उनके घर में पढ़ने जाते थे। परिणामस्वरूप, थोड़े समय में सारे वेद तथा उपनिषदों का अध्ययन ही नहीं कंठाग्रभी कर लिये विचारणीय बात है क्या राजमहल में उनके पढ़ने की व्यवस्था नहीं हो सकती थी? राज भवन में शायद वशिष्ठ श्री राम को इतना योग्य न बना पाते। अपने घर में उन्होंने उन्हें योगाभ्यास कराते हुए शिक्षा दी। वे स्वयं योगाभ्यासी थे। यही कारण है कि राम आगे चलकर इतने महान बने और समाज में पूज्य हो गये। वैसे तो श्रीराम उपाय प्रत्यय के योगियों की श्रेणी में आते हैं। फिर भी उन्होंने एक आदर्श छात्र का अभिनय कर विद्यार्थियों को सीख दी। परम्परागत शेष तीनों भाई भी गुरु के घर जाकर योगाभ्यास करते हुए शिक्षा प्राप्त की होगी। तभी तो भरत भरत बन गये।

योगयोगेश्वर ने श्रीकृष्ण तो अनादि सिद्ध होते हुए भी सान्दीपन गुरु के यहाँ जाकर उनकी सेवा करते हुए योगाभ्यास के द्वारा शिक्षा ग्रहण कर विद्यार्थी समाज को आदर्श विद्यार्थी बनने का मार्ग–दर्शन किया। आगे चलकर इनका जीवन कैसे बना यह भी जानते हैं। ध्रुव प्रहलाद, एकलव्य, शेर के दाँत गिनने वाला नन्हा सा बालक भरत जिसके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा यह सभी योगाभ्यासी थे।

गार्गी जैसी विदुषी नारियों का जीवन भी योगमय था। छात्राओं के लिए इनका विद्यार्थी जीवन योग रत होने की प्रेरणा देता है। कलयुग में भी सिद्धों की कृपा होने पर तो रामरती जैसी लड़कियाँ भी (जिसके ऊपर हमारे योगयोगेश्वर अनन्त महाप्रभु श्री राम–लाल जी ने कृपा की थी) ऊँची से ऊँची स्थिति को प्राप्त कर लेती हैं, फिर छात्र और छात्राओं का कहना ही क्या।

इस भारत में महाभारत होने पर देश की हालत बिगड़ने लगी। योग–विद्या का प्रचार शिक्षा के क्षेत्र से मिट गया। आज का विद्यार्थी समाज उदण्ड हो गया है। अकल को खोकर नकल या गैस के सहारे परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहता है। सोचने और समझने की शक्ति जाती रही। अगर गहराई से सोचा जायेतो सारा दोष वर्तमान शिक्षा–प्रणाली का है। स्कूल और कालेजों में शिक्षक स्वयं मेहनत नहीं करना चाहता। बालक की बुद्धि कुशाग्र होती नहीं। वह भी पढ़ने से घबराता है। परीक्ष काल समीप आ जाने पर गलत रास्ते अपनाने को बाध्य हो जाता है। येनकेन प्रकारेण सफलता मिलने पर वह किसी काम का नहीं निकलता। आचरण बिगड़ जाता है। आगे चल कर अपनी सन्तानों को भी अपने जैसा बनाता है। अधिकांश विद्यार्थियों का तो लक्ष्य एक मात्र सिनेमा ऐक्टर बनना ही रहता है जिसके लिए वह जीवन पर्यन्त प्रयास करता करता मर जाता है। राम, कृष्ण, ध्रुव, प्रहलाद, आदि तो कोई बनना ही नहीं चाहता। लव–कुश जैसे भाग्यशाली बालकों को ही बाल्मीकि जैसे गुरु मिल पाते हैं जो योगाभ्यास करते हुए शिक्षा प्राप्त कर महान से महान शक्ति का मुकाबला करने में समर्थ हो सकते हैं।

आज से सौ वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने गुरुकुल खोलने पर बल दिया था। गुरुकुल में योगाभ्यास के साथ शिक्षा की व्यवस्था करने का आदेश दिया। कुछ गुरुकुल खोले गए। कुछ समय तक कार्य ठीक चला। महर्षि दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् गुरुकुलों में भी स्कूल तथा कॉलेजों की बू आने लगी। देश की बिगड़ती हुई दशा को देखते हुए शिक्षा प्रणाली में योगाभ्यास अत्यावश्यक हो गया है। शिक्षा विभाग का परम कर्त्तव्य है कि हर स्कूल और

कॉलेज में योग का भी क्लास लगवाये।

विद्यार्थियों का यम और नियम का पालन कराया जाये। यम के पाँच अंग होते हैं। जैसा कि भगवान पतंजलि ने योग दर्शन में कहा है–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्म–

चर्यापरिग्रहा यमाः

(साधन पाद सूत्र 30)

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह का अभाव)–ये पाँच यम हैं।

मन, वाणी और शरीर से किसी को कभी कष्ट न देने वाला विद्यार्थी क्या किसी का दुश्मन हो सकता है। प्रिय और हितकर सत्य बोलने वाले छात्र छल और कपट से सदैव दूर रहेंगे। अस्तेय का पालन करने वाला शिक्षार्थी आगे चलकर ईमानदार निकलेगा। ब्रह्मचर्य का आचरण करते हुए वह शक्ति का पुंज बन जायेगा। अपरिग्रह से उदारता का पाठ सीखेगा।

योग दर्शन में नियम इस प्रकार बतलाए गए हैं–

शौचसंतोषतपःस्वाध्याये–

श्वरप्रणधानानि नियमाः

(साधन पाद सूत्र 32)

अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–शरणागति ये पाँच नियम हैं।

जल और मिट्टी के द्वारा बाह्य शुद्धि होती है। राग–द्वेषादि मलों का नाश करना भीतर की पवित्रता है। शुद्धि का महत्व समझने वाला विद्यार्थी मल–मूत्र त्याग करने के पश्चात् क्या कागज का उपयोग करेगा या साबुन से हाथ धोयेगा। विद्यार्थी जीवन में महात्मा गाँधी विदेश में शौच जाने के पश्चात् मिट्टी से हाथ मटियाते थे। विद्यार्थी–जीवन में योग मार्ग को अपनाते हुए आगे कितने महान बन सके ? यह सभी जानते हैं। कामना या तृष्णा न करने वाले संतोषी बालक के अन्दर ईर्ष्या और द्वेष टिक ही नहीं सकता। तप का अभ्यासी छात्र भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी आदि के जोड़ों को सहन करने में समर्थ हो जाएगा। चाय की दुकान की तरफ ताकेगा तक नहीं। खाली समय में स्वाध्याय के माध्यम से शास्त्रों का ज्ञानार्जन करेगा। ईश्वर–प्रणिधान से दुराचरण से बचेगा।

यम–नियम पालन करने वाले विद्यार्थियों का जीवन निर्मल और सुखमय हो जाएगा।

वह हड़ताल और तोड़फोड़ की बात सोच ही नहीं सकेगा। राजनीति के दलदल से दूर रहना चाहेगा। वह महान तेजस्वी और विद्वान बनने में रत रहेगा। किसी प्रकार का प्रलोभन उसे पतित नहीं कर सकेगा।

स्कूल और कॉलेजों में छात्र–छात्राओं को समान रूप से आसक और हल्का प्राणायाम सिखाने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। मेरे विचार से आसनों में महावीर आसन, पद्मासन, सुखासन, मयूरासन, सर्पासन, सूर्य, नमस्कारासन तथा वृश्चिकासन विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। उन्हें इन्हीं आसनों का अभ्यास कराना चाहिए। 66 प्रतिशत विद्यार्थी मधुमेह का शिकार होता है। महावीर आसन का अभ्यासी इस रोग से मुक्त रहेगा। हल्का प्राणायाम के लिये तथा सन्ध्यावन्दन हेतु पद्मासन तथा सुखासन सिद्ध होना आवश्यक है। पद्मासन के अभ्यास से सुषुम्ना नाड़ी में गति होगी तथा मन भी एकाग्र होगा। मयूरासन त्रिदोष (कफ, बाल, पित्त) नाशक है। सर्पासन से विद्यार्थी मेधावी बनेगा। सूर्य नमस्कारासन से कान्ति की वृद्धि होगी। वृश्चिकासन से शरीर में स्फूर्ति बनी रहेगी।

उपरोक्त आसनों को सिद्ध करने वाले विद्यार्थी को क्या नकल या गैस की आवश्यकता महसूस होगी। उसकी बुद्धि इतनी कुशाग्र हो जायेगी कि थोड़े परिश्रम से अत्यधिक शिक्षा ग्रहण कर सकेगा। सोचने और समझने की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी।

प्राणायाम की कठिन साधना न कराकर यथाशक्ति हल्का रेचक, पूरक तथा कुम्भक कराना चाहिए। सन्ध्या का नित्य अभ्यास करने से भी प्राणायाम का अभ्यास हो जायेगा इसी दृष्टिकोण से वैदिक काल के विद्यार्थी नित्य प्रातः और सायं सन्ध्या करते थे। महर्षि दयानन्द ने भी गुरुकुल के छात्रों को सन्ध्या कराने का आदेश दिया था। इससे मन की स्थिरता में सहायता मिलेगा। मन बम्बई, कलकत्ता की सैर नही करेगा। मन का गुलाम शिक्षार्थी ही किताबों को बेच कर सिनेमा देखता है। घर में भोजन न कर बाहर चटपटा की दुकान साफ कर जाता है, जिससे अनेक रोगों का शिकार बनता है। अशोक कुमार, राजकुमार, धर्मेन्द्र, नरगिस, साधना, सायराबानू, हेमामालिनी आदि सिनेमा पात्रों की नकल करता हुआ अधोगति को प्राप्त होता है। चाकू चलाना, 420 का धन्धा अपनाना विद्यार्थी समाज के ही लिये नहीं अपितु देश के लिये भी घातक है। प्राणायाम मन रूपी हाथी को वश करने का अंकुश है।

किसी मकान को बनाने के लिए दृढ़ नींव की आवश्यकता होती है। नींव कमजोर होने से मकान किसी भी समय धराशायी हो सकता है। विद्यार्थी समाज किसी भी देश के

उज्जवल भविष्य रूपी मकान के स्तम्भ होते हैं। उनके चरित्रवान होने पर देश उन्नतिशील होगा। प्रगति के मार्ग में आने वाली सारी बाधाओं को पार कर संसार का सिरमौर बन सकेगा।

शिक्षा–विभाग की योग के प्रति उपेक्षा देश के लिए घातक ही नहीं पतन की खाई है। भारत के भावी कर्णधारों के उज्जवल भविष्य के लिए एवं देश की सुखशान्ति व्यवस्था तथा उत्थान हेतु विद्यार्थी जीवन में योग को स्थान देना ही होगा। अतः अन्त में निवेदन है–

आसन प्राणायाम भी, हो शिक्षा का अंग।
इससे छात्र समाज का, बदल जायेगा ढंग।।
बदल जायेगा ढंग करेगा निज पर शासन।
निश्चय ही पहिचान सकेगा तब अनुशासन।।
शान्त दूत बन ग्रहण करेगा उत्तम साधन।
फिर पायेगा भारत जग में ऊँचा आसन।।

वाणी की सत्यता का मापदण्ड विचार एवं आचार है। यदि विचारों में सत्यता नहीं है वहाँ संघर्ष चल रहा है, नाश–विनाश की योजनाएँ बन रही हैं, तो वाणी में सत्यता आ ही नहीं सकती। यदि कभी वाक्–छल के द्वारा विचारों की असत्यता को आवृत्त करने का प्रयत्न भी किया गया, तो कर्म उसे निवारण कर देगा। सत्य एक प्रज्जवलित दीपक है, उसे कभी छिपाया नहीं जा सकता। अतः वाणी की सत्यता का महत्व मन एवं कर्म पर ही निर्भर है। एक धूर्त एवं दुष्ट व्यक्ति भी दूसरे को धोखा देने के लिए वाणी का सत्य बोल सकता है। परन्तु उसके इस सत्य को विष–कुम्भ पर अमृत का ढक्कन मात्र कहा है। वह केवल ऊपर से सत्य प्रतीत होता है परन्तु अन्दर में हलाहल जहर है, प्राणनाशक है। अतः शास्त्रकारों ने इसे सत्य नहीं, असत्य ही कहा है। वस्तुतः वह यथार्थता एवं सत्यता से कोसों दूर है।

–उपाध्याय श्री अमरमुनि महाराज

शरीर सम्पत्ति

मानव जीवन का उद्देश्य अपने को सुखमय तथा शक्ति सम्पन्न बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब कि हमारे शरीर स्वस्थ, बलवान और नीरोग हों, बिना शरीर के स्वस्थ, बलवान तथा नीरोग बनाए हम न तो सांसारिक सुखों को ही प्राप्त कर सकते है, और न ही आध्यात्मिक शान्ति तथा आनन्द को उपलब्ध कर सकते हैं। शरीर ही कर्त्तव्य परायण बनने का परम साधन है। सभी विज्ञजनों ने में शरीर की महत्ता का वर्णन किया है।

सत्वस्थ ही मनुष्य स्वस्थ है !

जो धन केवल निजहित में, केवल अपने पेट पालन में अपव्यय किया जाता है वह धन ऐश्वर्य नहीं है। ऐश्वर्यवान तो तेजस्वी वर्चस्वी ओजस्वी और उदार होता है। धनवान तो प्रायः अभिमानी जल्प में रुचि रखने वाले, दूसरों से घृणा करने वाले और बदले में ईर्षा पाने वाले लोग जो रजोगुणी तमोगुणी होते हैं, वे रोगी रहते हैं, वे स्वस्थ नहीं रहते। सत्वस्थ मनुष्य ही स्वस्थ है। वही ऐश्वर्यशाली, वीर्यवान्, और सत्कर्मो में रुचि रखने वाला कर्त्तव्य निष्ट व्यक्ति है। कर्त्तव्य निष्ठ व्यक्ति उदार होता है। वह दरिद्र नहीं होता। वह तो भगवान के व्रत का व्रती होता है, उसका संकल्प सत्य होता है, सत्य के साथ ही सुयश कीर्ति, शोभा, श्री का वास रहता है।

-श्रुतिसार

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

साधु पृष्टं भवद्भिश्च लोकानां हितकारकैः
भवन्तश्च तथा धन्याः पवित्रा कुलभूषणाः

सूतजी बोले ! लोकों के हित करने को आपने अच्छा प्रश्न किया आप धन्य हो, पवित्र हो, कुल के भूषण हो।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य श्री (डॉ.) रामलाल शर्मा